बहुरंगी चित्रमय

महाभारत

१

लेखक
नटवरलाल याज्ञिक

चित्रकार
चन्दू त्रिवेदी

हरि ॐ आश्रम प्रेरित श्री नानाभाई भट्ट सांस्कृतिक कथा ट्रस्ट पुष्प-1

बहुरंगी सचित्र महाभारत कथा

ईश्वरभाई पटेल
कुलपति, गुजरात युनिवर्सिटी
संयोजक

आचार्य नटवरलाल शिवशंकर याज्ञिक
कथालेखन

चन्द्र त्रिवेदी
चित्रकार

मगनभाई ओझा
मंत्री, चरोतर एज्युकेशन सोसाइटी, आणंद
प्रकाशक

योजनादान : **हरि ॐ आश्रम, नडियाद**

आवृत्ति : प्रथम, कुल प्रतियाँ : गुजराती 7500, हिन्दी 7500

मुद्रक एवं विक्रेता
गोवरसन्ज़ पब्लिशर्स (प्रा०) लिमिटेड
गुलाब हाउस, मायापुरी, नई दिल्ली-27

श्री बाल गोविन्द प्रकाशन
गांधी मार्ग, अहमदाबाद-1

मूल्य : दस रुपये (डाक खर्च सहित) बारह ग्रंथों के सैट का इकट्ठा मूल्य : सौ रुपये

नं. १०४

भूमिका

भारत की नयी पीढ़ी महाभारत, रामायण, उपनिषद, भागवत आदि बहुमूल्य प्राचीन, वैचारिक, साहित्यिक, सांस्कृतिक विरासत से सुपरिचित हो सके और संस्कार तथा सद्विचार की अक्षय निधि जैसे इन ग्रंथों को पढ़ने के लिए प्रेरित हो, इस उद्देश्य से बारह ग्रंथों की इस पुस्तकमाला को प्रकाशित करने का निश्चय किया गया है।

नयी पीढ़ी रंगबिरंगी, चित्र-विचित्र दुनिया में विचरती है। उसका भारत की अक्षय विरासत के साथ अनुबंध बिठाने के विचार से महाभारत की इन कथाओं को अभिनव रंगों से आलेखित चित्रों सहित प्रस्तुत करने का आयोजन किया गया। पिछली पीढ़ी माणभट्टों के द्वारा अथवा भवाई जैसे लोकनाट्यों के द्वारा इन कथाओं का परिचय प्राप्त कर लेती थी। आज सामाजिक परिवेश बदल गया है। संस्कार प्राप्ति अथवा ज्ञान प्राप्ति के माध्यमों में भी तदनुरूप परिवर्तन हुआ है। इसलिए इस प्रकार के सुन्दर एवं सचित्र माध्यम के द्वारा नयी पीढ़ी को अपनी इस विरासत से सुपरिचित कराने का निश्चय किया गया, जिससे उसके चित्त में भारतीय परम्परा के अनुरूप सांस्कृतिक-सामाजिक अनुकूलता के लिए भूमिका तैयार हो सके।

अपनी अतिशय अस्वस्थता के बावजूद भारत की नयी पीढ़ी के निर्माण के लिए आर्थिक अनुदानों को जुटाकर असंख्य योजनाओं को प्रवर्तित एवं संवर्धित करने वाले हरि ॐ आश्रम के पूज्य श्री मोटाजी ने इस योजना का समुचित स्वागत किया और उसके लिए दो लाख रुपए का अनुदान भी जुटा दिया। इसके लिए चरोतर एज्यूकेशन सोसायटी तथा भारत की नयी पीढ़ी की ओर से मैं उनका आभार मानता हूँ। ऐसी योजनाओं के लिए पूज्य श्री मोटाजी मुझे निमित्त बनाते हैं। यह उनका आशीर्वाद है, ऐसा मैं मानता हूँ। भारत और उसकी नयी पीढ़ी पर उनका ऋण इतना अपरंपार है कि आभार प्रदर्शन मात्र से उऋण नहीं हुआ जा सकता। परंतु पूज्य श्री मोटाजी तो भाव के समर्थक और पोषक हैं, इसलिए मेरे इस भाव को यथोचित रूप में स्वीकार करेंगे, ऐसी मेरी श्रद्धा है।

योजना को कार्यान्वित करते समय इसके लिए चित्रकार और लेखक का विचार आया। चित्रकार श्री चन्द्र त्रिवेदी और लेखक आचार्य नटवरलाल याज्ञिक को ऐसे कार्यों में धर्मप्रेरित रस और रुचि है। इसलिए उनसे सम्पर्क स्थापित करते ही उन्होंने इस काम को उत्साहपूर्वक स्वीकार कर लिया। यह मेरे लिए आनन्द की बात है। दोनों मित्रों ने अत्यंत व्यस्त होते हुए भी इस नये काम के दायित्व को स्वीकार किया, इसके लिए मैं उन्हें धन्यवाद देता हूँ। इन कथाओं को ऑफसेट में प्रस्तुत करने और हिन्दी गुजराती कृतियों को तैयार करके हिन्दी आवृत्ति के वितरण का उत्तरदायित्व प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार करके सर्वश्री गोवर्धन कपूर एण्ड सन्स दिल्ली के मेरे सन्मित्र श्री गोवर्धन कपूर ने इस यज्ञ में सहकार दिया, इसलिए मैं उनका भी आभार मानता हूँ। प्रथम पुस्तक विलम्ब से ही सही, आखिर प्रकाशित हो रही है, इसे मैं प्रभु की अनुकम्पा ही समझता हूँ। मेरे मित्र श्री मोहन भाई पटेल ने भी हमेशा प्रेम से इस पुस्तक-माला को अनेक प्रकार से सहायता दी है। आशा है कि इसके बाद के ग्रंथ अब एक-एक करके गुजराती-हिन्दी भाषी प्रजा के समक्ष जल्दी ही प्रस्तुत किये जा सकेंगे, और उभय भाषाओं के पाठकों, विशेषतया प्राथमिक एवं माध्यमिक शालाओं, ग्रंथालयों और सुज्ञ माता-पिताओं के द्वारा इस पुस्तक माला का समुचित स्वागत होगा।

चरोतर एज्यूकेशन सोसायटी, आणंद

जून, 1975

ईश्वरभाई पटेल

अध्यक्ष

नैमिषारण्य का यज्ञ

एक बड़ा वन था। लोग उसे नैमिषारण्य कहते थे। अनगिनत पेड़, कई नदियाँ। एक नदी के किनारे शौनक मुनि का आश्रम था। छोटी-छोटी घास-फूस की झोंपड़ियाँ, साफ आँगन, आँगन में घटादार पेड़ और पेड़ों के नीचे लीपे-पोते चबूतरे। बीच मैदान में एक अग्निशाला जिसमें प्रज्वलित अग्नि रहती थी। वहीं अतिथिशाला भी थी।

वहाँ और भी मुनि रहते थे। पढ़ना-पढ़ाना, अग्नि में होम करना और ईश्वर का चिन्तन करना, यह था मुनियों का काम।

आश्रम में अनेक छात्र रहते थे। पौ फटते ही सब जागते। नहा-धोकर संध्या पूजा करते, गुरूजी के पास पढ़ते। फिर कोई गायें चराने जाता, कोई खेत में काम करता, कोई आवश्यक काम के लिए बस्ती में जाता। कोई बेकार बैठा न रहता। पढ़ाई और काम दोनों साथ-साथ। बड़प्पन में बड़ी काम की बातें।

आश्रम में पशु-पंछी भी मौज से रहते। हिरन, मोर, तोता, मैना और बन्दर-लंगूर भी। आश्रमवासी लोग बड़े प्रेम से इन सबकी देखभाल करते।

एक समय शौनक मुनि ने बारह वर्ष चलने वाला एक यज्ञ शुरू किया। यज्ञ माने ईश्वर की पूजा। इतना बड़ा यज्ञ भला अकेले थोड़े हो सकता है? शौनक मुनि ने आसपास के अनेक मुनियों को निमंत्रित किया। ये सब यज्ञ कार्य में सहायता करते। सुबह शाम यज्ञ कार्य चलता। अवकाश में सब मिलकर ज्ञान की बातें करते।

इस यज्ञ में एक सूत पौराणिक आये। उग्रश्रवा उनका नाम था। पुराने समय की मजेदार कहानियाँ वे जानते थे। सरस मधुर लोकगीत भी जानते थे।

एक दिन यज्ञकार्य से निबटकर मुनिगण पौराणिक जी के पास आ बैठे। कहने लगे, 'पौराणिक जी, द्वैपायन मुनि के 'जय' काव्य की हमने बड़ी प्रशंसा सुनी है। आप वह काव्य हमें सुनायें।'

सूत पुराणी ने कहा, 'ठीक है, पर बड़ा लंबा है वह काव्य। उसकी कथा कहते मुझे और भी बहुत बातें करनी पड़ेंगी।'

मुनियों ने कहा, 'कोई बात नहीं, हम धीरज से सुनेंगे।'

सूत पुराणी ने कथा कहना आरम्भ किया।

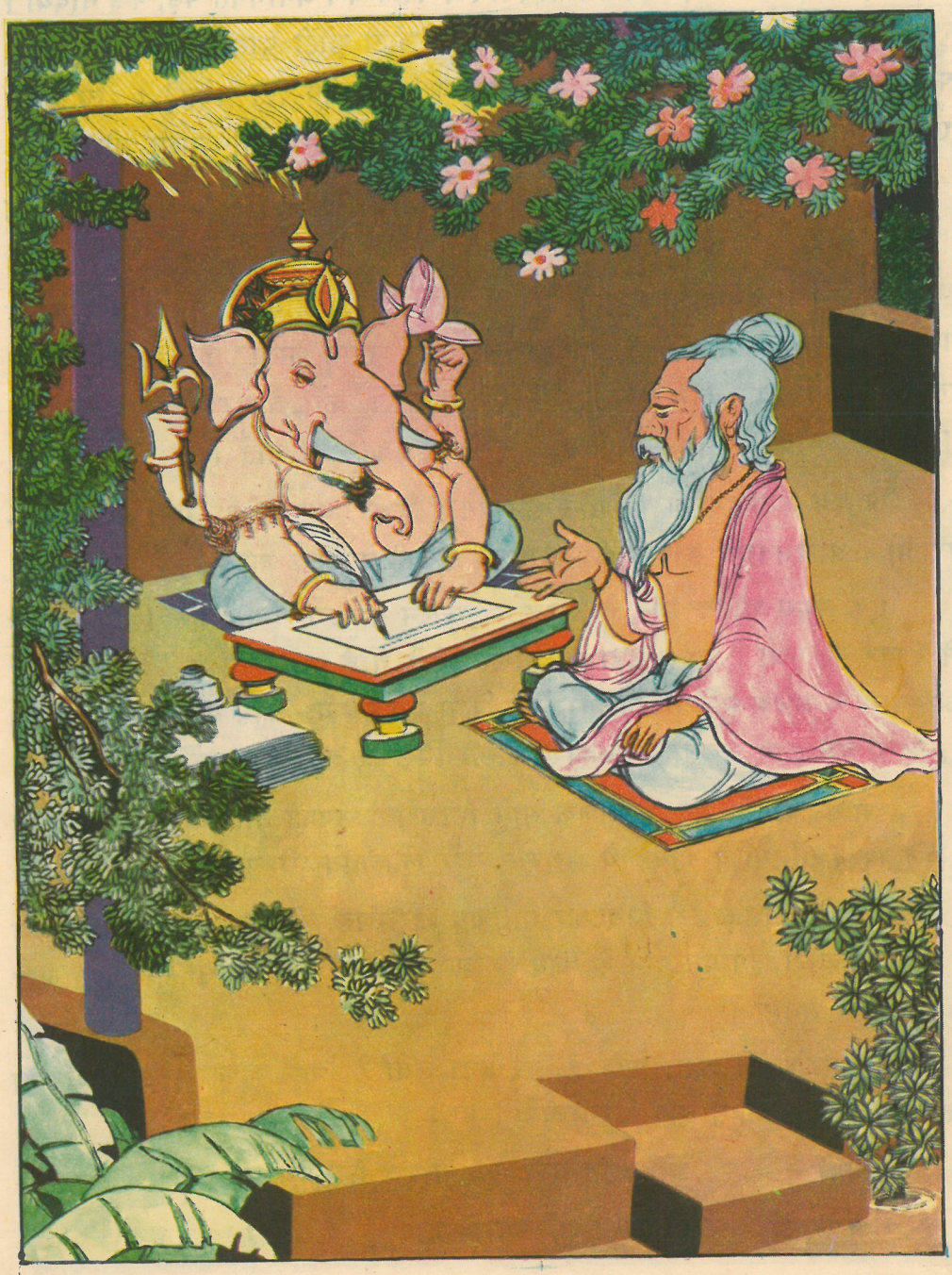

व्यास मुनि और श्री गणेश

सूत पौराणिक कहने लगे, व्यास मुनि को तो आप सब जानते ही हैं। उनका नाम तो है कृष्ण। उनका जन्म एक द्वीप में हुआ था अतः लोग उन्हें द्वैपायन भी कहते हैं। सब विद्याओं के वे भंडार हैं। सरस्वती का उनके मुख में वास है। कौरव पाण्डवों के भयावने युद्ध की पूरी बात वे जानते हैं। पांडव सच्चे थे। कौरव दुष्ट थे। पांडवों को बहुत दुःख झेलने पड़े। पर अन्त में सत्य की जय हुई। पांडव जीते। उनकी कहानी बड़ी बोधदायक है। व्यास जी ने उस कथा को लेकर एक काव्य बनाया है। वही है 'जय' काव्य। वह काव्य सुनने में आपको बड़ा चाव रहेगा।

पांडव कौरवों की कहानी बड़ी लम्बी है। उसको लेकर काव्य रचने में व्यास जी को पूरे तीन साल लगे। अब उन्हें चिन्ता यह हुई कि उसे सुरक्षित कैसे रखा जाए। अच्छा हो अगर कोई इसे लिख दे।

व्यास जी की इस चिन्ता का ब्रह्माजी को पता चला। वे पहुँचे व्यास जी के पास। बोले, 'द्वैपायन, गणेश जी को बुलाओ। वे तुम्हारा काव्य लिख देंगे। गणेश जी जैसा लेखक मिलना मुश्किल है।'

व्यास जी ने कहा, 'भगवन् आपने मेरी चिन्ता टाल दी। अब मैं गणेश जी से विनती करूँगा। आप भी मेरी सहायता कीजिएगा।' फिर व्यास जी ने श्रीगणेश को बुला भेजा। सत्कार के साथ आसन पर बिठाया। फिर कहा, 'भगवन्, मैंने एक काव्य रचा है। आप उसे लिख दीजिए।'

श्रीगणेश ने कहा, 'लिख तो दूँ मैं आपका काव्य, पर एक शर्त है। मेरी लेखनी रुकेगी नहीं। वरना मैं लिखना छोड़ दूँगा।' व्यास जी भी पहुँचे हुए थे। कुछ हँसकर बोले, 'ठीक है भगवन्, पर आप भी बिना समझे नहीं लिखेंगे।'

गणेश जी हँसने लगे। व्यास जी की बात उन्होंने मान ली।

फिर तो व्यास जी बोलते गए और गणेश जी लिखते गए। रचित काव्यांश खत्म होने पर व्यास जी एक कठिन श्लोक कह देते। जब तक गणेश जी उसे समझ पाते तब तक व्यास जी आगे का काव्यांश तैयार कर लेते।

इस प्रकार व्यास जी का 'जय' काव्य लिखा गया।

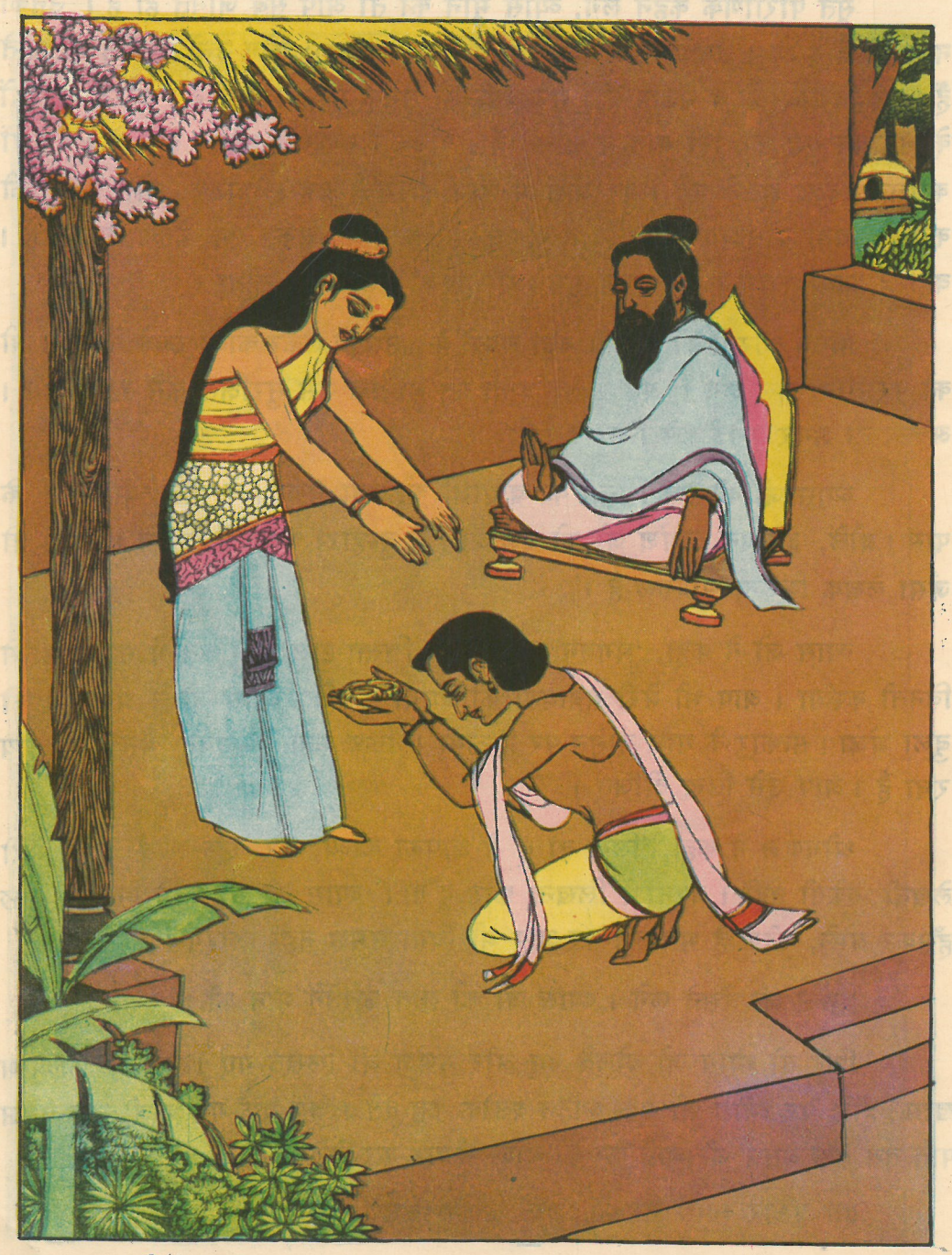

जनमेजय का सर्पसत्र यज्ञ

कुरुदेश की राजधानी थी हस्तिनापुर। वहाँ कुरुवंशी राजा जनमेजय राज्य करता था। एक दिन मुनि उत्तंक जनमेजय के पास आकर बोले, तुम्हारे पिता परीक्षित को तक्षक नाग ने मारा था, उसका बदला क्यों नहीं लेते। मंत्रियों ने कहा, 'सच्ची बात है। आप उस समय बहुत छोटे थे।'

राजा ने कहा, 'तब तो मैं सब नागों का संहार करूँगा।'

राजा ने नागों का संहार आरम्भ किया, साथ-साथ एक यज्ञ भी। वही सर्पसत्र यज्ञ था।

ऋषियों ने पूछा, 'उत्तंक मुनि कौन थे? क्यों उन्होंने राजा को ऐसी सलाह दी?'

सूत पौराणिक बोले, धौम्य मुनि को तो आप जानते ही हैं। उनके सब शिष्य बड़े तेजस्वी और गुरुभक्त थे। उनका एक शिष्य अरुण पाञ्चाल्य धान की क्यारी का पानी रोकने के लिए खुद बाँध बनकर सोगया था। गुरु ने पुकारा तो मिट्टी में से खड़ा हुआ। गुरु ने उसका नाम उद्दालक (जमीन फाड़कर निकला हुआ) रखा।

दूसरा शिष्य उपमन्यु भूख का मारा आक के पत्ते चबा गया जिससे वह अंधा हुआ। अश्विनी कुमारों ने उसे पुनः दृष्टि दी।

तीसरा शिष्य वेद भी पक्का गुरुभक्त था। उत्तंक वेद मुनि का शिष्य था। अध्ययन समाप्ति के बाद घर लौटते उसने गुरु से कहा, 'आपने मुझे पुत्रवत् रखकर पढ़ाया है। यह ऋण तो मैं नहीं चुका सकता, फिर भी कहिए मैं क्या करूँ?'

गुरु ने कहा, 'तुमने मेरी जो सेवा की है यही पर्याप्त है। मुझे कुछ न चाहिए, फिर भी पूछो गुरु पत्नी से।' गुरु पत्नी ने कहा, 'राजा पौष्य की रानी के पास पवित्र कुण्डल हैं। वे मुझे पसन्द हैं।'

उत्तंक पहुँचा राजा पौष्य के पास। राजा ने कहा, 'यह तो हमारा धर्म है कि ब्रह्मचारी की सहायता करें। लो, ले जाओ कुण्डल।' उत्तंक कुण्डल लेकर गुरु के घर जाने को निकला।

अब बात यह हुई कि नाग तक्षक कब का उन कुण्डलों की ताक में था। उत्तंक को छलकर वह कुण्डल ले भागा। उत्तंक भी झाँसे में आने वाला नहीं था। उसने तक्षक का पीछा किया। सद्भाग्य से इन्द्र ने उत्तंक की सहायता की। इन्द्र वेद मुनि के शुभचिन्तक थे। कुण्डल वापस प्राप्तकर उत्तंक गुरु के घर पहुँचा। सब बात गुरु से कही। कुण्डल गुरुपत्नी को दिये। उनका आशीर्वाद पाकर अपने घर गया।

तबसे उत्तंक को तक्षक से डाह थी।

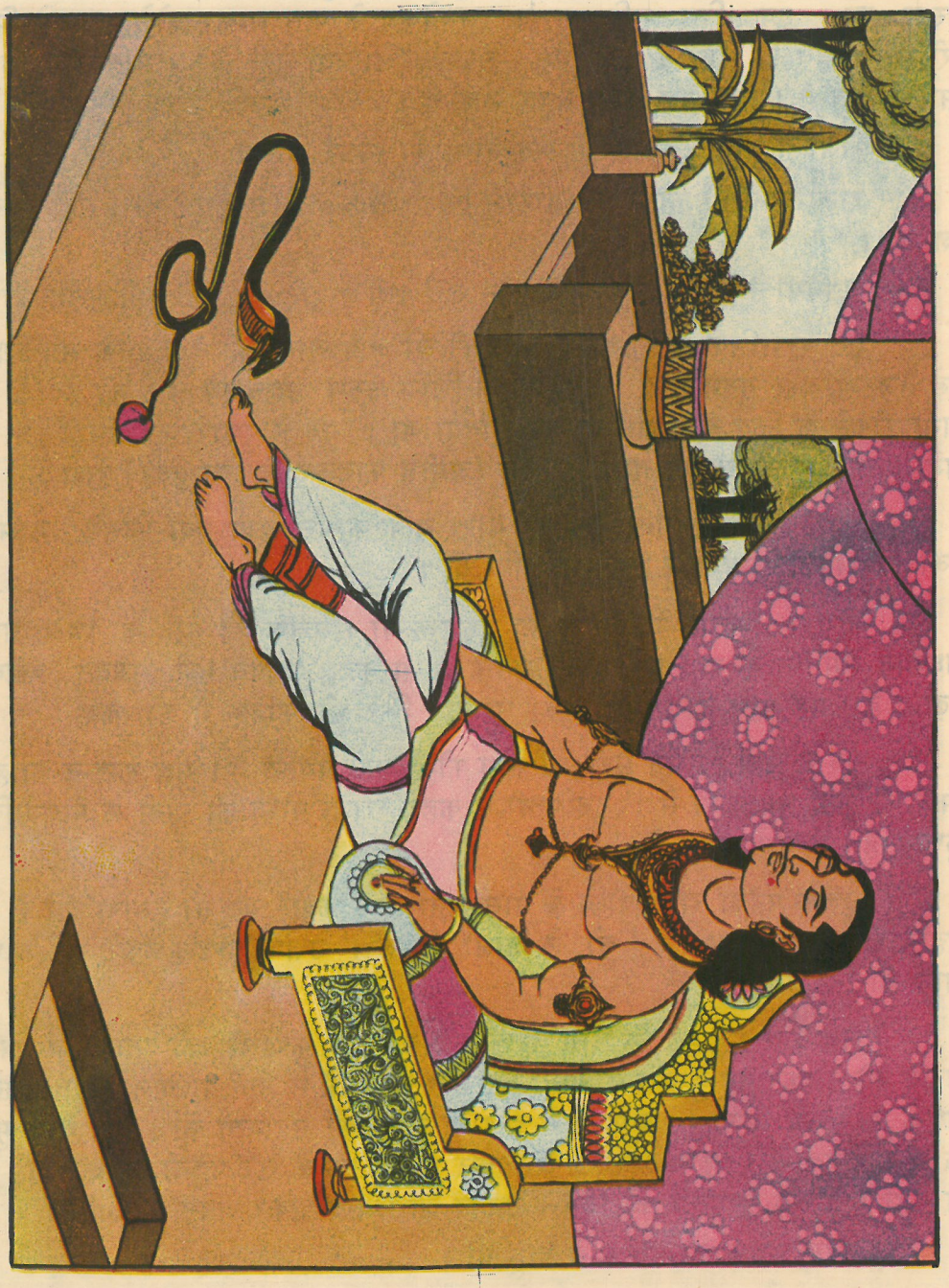

परीक्षित की मृत्यु

महाभारत के युद्ध का अन्तिम दिन था। कौरवपक्षीय अश्वत्थामा ने नारायणास्त्र छोड़ा जिससे अभिमन्यु पुत्र परीक्षित की माता के गर्भ में ही मृत्यु हो गई। उत्तरा करुण विलाप करने लगी। सब चिन्तित थे, अब क्या होगा। परन्तु भगवान कृष्ण ने परीक्षित को पुनर्जीवित कर दिया।

कुछ वर्षों के बाद जब कलियुग का आरम्भ हुआ। पाण्डव राज-काज छोड़कर हिमालय चले गये। अब परीक्षित राजा बना। वह एक अच्छा राजा था। किन्तु उसे शिकार की बुरी आदत थी। एक समय परीक्षित शिकार को निकला। वन में उसने एक पुष्ट हिरन देखा। राजा ने जोर का एक तीर मृग पर चलाया। मृग घायल होकर भाग निकला और घने वन में छिप गया। राजा ने उसका पीछा किया किन्तु मृग का कहीं पता न था।

कड़ी धूप थी। राजा थक गया। उसे प्यास लगी थी। नजदीक में उसने एक मुनि को देखा। वे शमीक मुनि थे। राजा ने पूछा, 'भगवन् आपने इतने में कहीं घायल मृग देखा ?' परन्तु मुनि तो ईश्वर के ध्यान में लीन थे। राजा को उत्तर न मिलने से क्रोध आया। पास ही एक मृत साँप पड़ा था। राजा ने धनुष की कोटि से उसे उठा-कर डाल दिया मुनि के गले में। कहा, 'लो यह, जवाब जो नहीं देते।' फिर वह राजधानी चला गया।

कुछ देर के बाद शमीक का पुत्र श्रृंगी आश्रम में आया। पिता के गले में मृत साँप देखकर मारे क्रोध के उसने शाप दिया, 'जिसने यह दुष्कृत्य किया है सप्ताह के अन्दर उसे साँप डस लेगा।'

ध्यानमुक्त शमीक ने पुत्र से कहा, 'क्रोध से तप का नाश होता है। ब्राह्मण को क्रोध करना उचित नहीं। और फिर राजा तो सबका रक्षक है। उस पर क्रोध करना बिलकुल ठीक नहीं।' फिर शमीक पहुंचे हस्तिनापुर। राजा को सारी बात बताकर सचेत कर दिया। कहा, 'साँप से बचना वरना तुम्हारी मृत्यु होगी।'

परीक्षित ने खूब सावधानी बरती। फिर भी फलों के ढेर से निकलकर तक्षक ने उसे डस लिया। राजा की मृत्यु हो गई। परीक्षित पुत्र जनमेजय उस समय बालक था। मंत्रियों ने जनमेजय का राज्याभिषेक किया और सावधानी से राज्य की रक्षा की।

युवा होने पर जनमेजय ने कारोबार अपने हाथों लिया। पिता की मृत्यु के कारण का उसे पता न था।

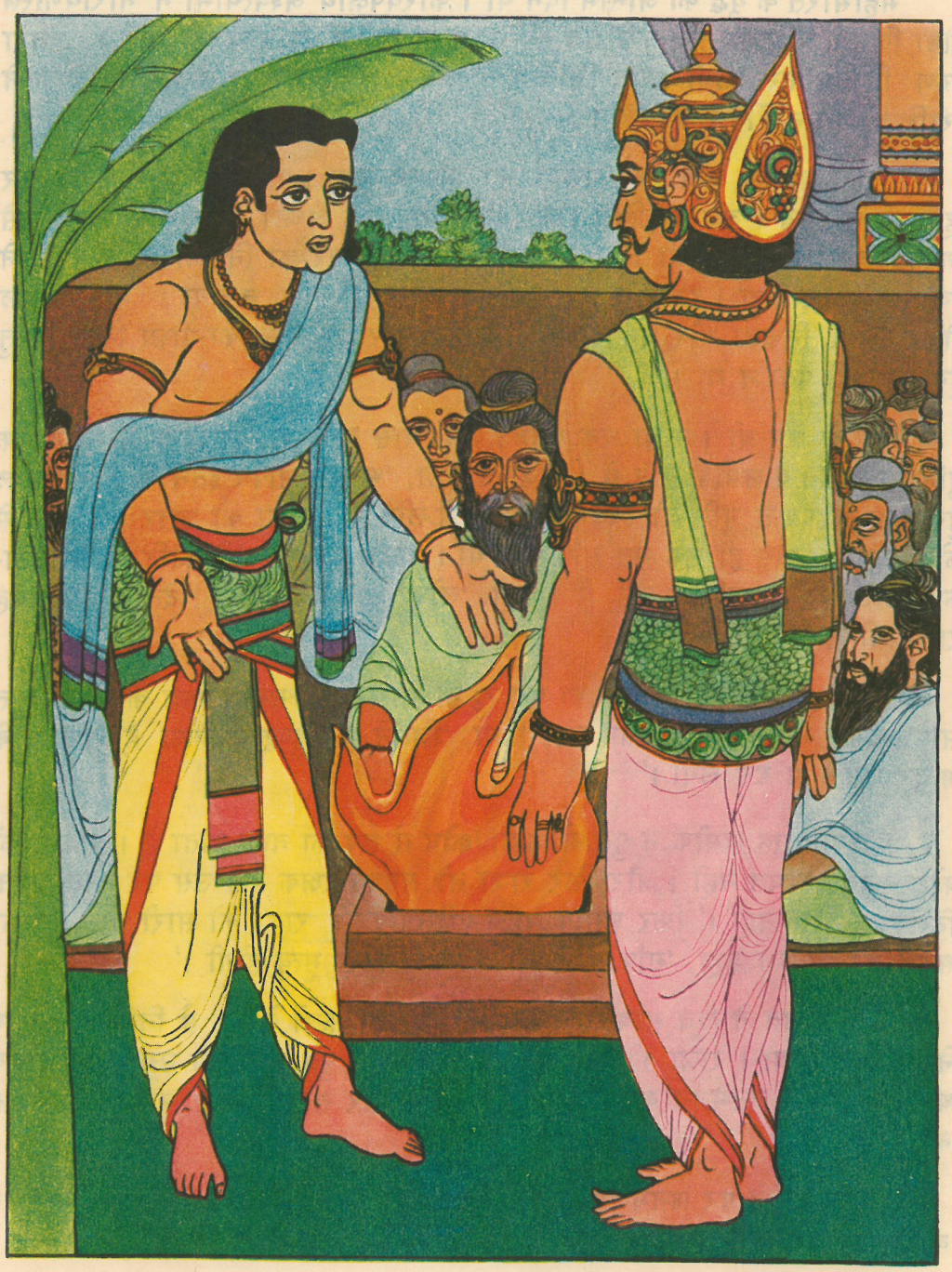

आस्तीक

जनमेजय ने सर्पसत्र यज्ञ आरंभ किया । कई ऋषि मुनि इस यज्ञ में पधारे थे । महर्षि द्वैपायन भी पधारे थे । साथ में उनके शिष्य शुक, सुमन्तु, वैशम्पायन आदि भी थे । धर्मगोष्ठियाँ चल रही थीं । इस बीच एक तेजस्वी मुनिकुमार वहाँ आया । मुनिकुमार ने राजा से कहा, 'किसलिये इतना बड़ा संहार करते हो राजन् ! हिंसा अच्छी बात नहीं ।'

जनमेजय ने कहा, 'मुनिकुमार, मेरे पिता को तक्षक नाग ने मारा था । उसका बदला चुका रहा हूँ ।'

मुनिकुमार ने कहा, 'बैर कहीं बैर से शान्त होता है राजन् ! क्षमा से बैर शान्त होता है । आप उत्तम शासक हैं, वीर हैं । क्षमा वीर को शोभा देती है । आप नागों को क्षमा करें । इसी में आपकी महानता है ।'

महर्षि द्वैपायन बोले, 'सत्य है राजन्, अब क्षमा करो ।'

जनमेजय ने महर्षि की आज्ञा मानकर नागसंहार रोक दिया । फिर महर्षि जी से पूछा, 'मैं नहीं समझ सकता यह युवक नागों का इतना पक्षपात क्यों कर रहा है ?'

महर्षि द्वैपायन ने वैशम्पायन से कहा, 'वत्स. राजा को आस्तीक की कथा सुनाओ ।'

वैशम्पायन कहने लगे, दक्ष प्रजापति के विनता और कद्रू दो कन्यायें थीं । दोनों बहनें कश्यप ऋषि से ब्याही हुई थीं । कद्रू के पुत्र थे नाग और विनता के अरुण तथा गरुड़ । नाग अनेक थे किन्तु अरुण और गरुड़ बड़े पराक्रमी थे ।

एक दिन दोनों बहनों ने इन्द्र के अश्व उच्चैःश्रवा को देखा । सुंदर, श्वेत यह अश्व देखने में मनोहर था । कद्रू बोली, 'वाह कितना सुंदर श्याम अश्व है ।'

'अरे !' विनता बोली, 'जरा गौर से देखो, सफेद है वह तो ।'

कद्रू ने कहा, 'लगी शर्त ? विनता ने कहा, अगर मैं हारी तो तेरी दासी बनूँगी ।'

कद्रू ने छल किया । श्याम रंग के अपने नागपुत्रों को उसने आज्ञा दी घोड़े के लिपट जाओ । कुछ नागों ने माता का कहा मान लिया । वे घोड़े की पूँछ से लिपट गये । पूँछ काली दिखाई दी । विनता हारी । वह कद्रू की दासी बनी । जिन नागों ने माता का कहा न माना उन्हें कद्रू ने शाप दिया, 'तुम्हें राजा जनमेजय मारेगा ।' घबराए हुए नाग ब्रह्माजी की शरण गए । ब्रह्माजी ने कहा, 'तुम्हारे कुल का भानजा तुम्हें बचाएगा ।'

वासुकि नाग की बहन जरत्कारू थी । उसका विवाह जरत्कारु मुनि से हुआ । उन दोनों जरत्कारुओं का पुत्र ही यह आस्तीक है । इसीलिए वह अपने ननिहालियों को बचाने निकला है ।

गरुड़

आस्तीक की कथा सुनकर राजा ने कहा, 'बेचारी विनता, फिर क्या हुआ उसका ?'

वैशम्पायन ने कहा, 'विनता के पुत्र गरुड़ को माता का दास्य अखरता था। एक दिन उसने माता से पूछा, माता, किस उपाय से तुम दास्य से मुक्त हो सकती हो ?'

विनता ने कहा, 'अगर तेरी मौसी प्रसन्न होती है।' गरुड़ उपाय की ताक में था।

एक दिन कद्रू के कहने पर गरुड़ नागों को ले आकाश में उड़ा। बहुत ऊँचाई पर सूर्य की तेज किरणों से नाग खूब जल गए। स्वर्ग का अमृत ही उन्हें पुनः स्वस्थ कर सकता था।

गरुड़ ने कहा, 'मैं अमृत लाऊँगा यदि मेरी माता को दास्य से मुक्त करती हो।'

कद्रू ने शर्त स्वीकार कर ली। साहसी गरुड़ अमृत लेने स्वर्ग को निकला। उड़ते-उड़ते वह विश्राम के लिए एक बरगद के बड़े पेड़ की शाखा पर ज्यों बैठा त्यों वह डाल टूट गई। उस डाल पर बालखिल्य ऋषिगण तप कर रहे थे। गरुड़ ने यह देखा और गिरती डाली को बीच आकाश में पकड़ लिया। गरुड़ के इस पराक्रम से प्रसन्न हो बालखिल्यों ने कहा, 'तूने हमें मृत्यु से बचाया, तेरी विजय होगी।'

आशीर्वाद पाकर गरुड़ स्वर्ग में पहुँचा। देवों ने सोचा, अगर यह गरुड़ हमारा भोजन अमृत ले गया तो हम खायेंगे क्या ? इसलिए मार भगाओ इसको।

देव सब गरुड़ पर टूट पड़े। परन्तु कुछ ही क्षणों में गरुड़ ने सब देवों को परास्त कर दिया। फिर अमृत का घड़ा लेकर गरुड़ कद्रू के पास आया। जले हुए नागों के शरीरों पर अमृत छिड़का गया। नाग स्वस्थ हो गये।

कद्रू ने सोचा, कितना अच्छा है यह गरुड़। इसने मेरा कितना बड़ा उपकार किया। मैं इसकी माता को मुक्त कर दूँगी। कद्रू ने विनता को दास्य से मुक्त कर दिया। विनता स्वतंत्र हो गई। सत्य की जय होती ही है। विनता के दोनों पुत्र पराक्रमी थे। बड़ा अरुण सूर्यदेव का सारथि है। दिन-रात सूर्यदेव का रथ हाँकते थकता नहीं। सवेरे उसके आने से आकाश लाल हो जाता है। जैसे सूरज देव के आगमन की खुशी में गुलाल छिड़का हो ! अरुण महान् है। गरुड़ पराक्रमी है। गरुड़ के पराक्रम से प्रसन्न भगवान् विष्णु ने उसे अपना सेवक बनाया है।

महान् पुरुष अपने बल से कार्य सिद्ध कर लेते हैं। वे साधनों पर निर्भर नहीं रहते।

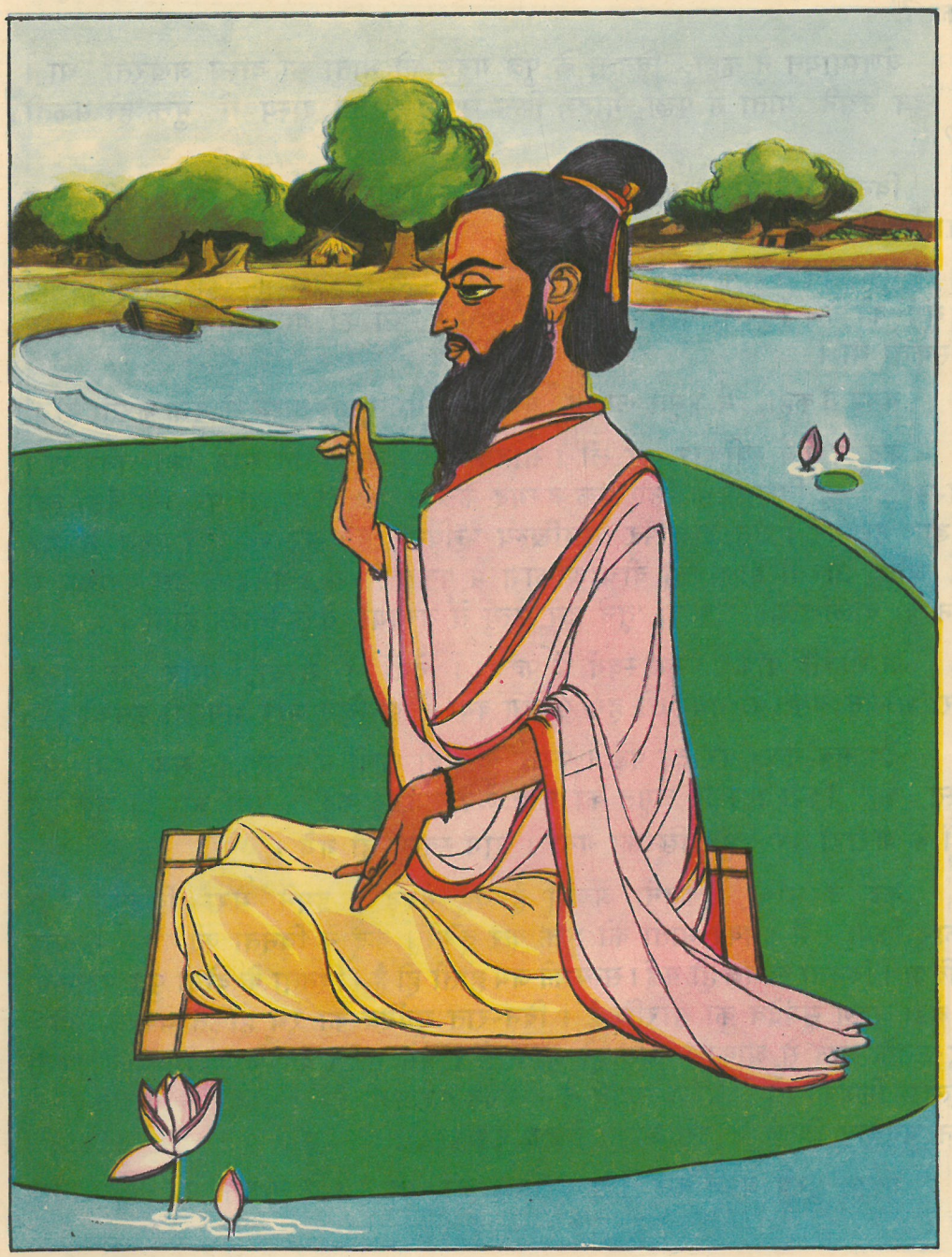

कृष्ण द्वैपायन

जनमेजय ने पूछा, 'मुनिवर, सुना है भगवान द्वैपायन ने मेरे पूर्वजों को लेकर एक काव्य रचा है। मेरी बड़ी मनसा है वह काव्य सुनने की।'

वैशम्पायन ने महर्षि द्वैपायन की ओर देखा। द्वैपायन ने कहा, 'वत्स, राजा को 'जय' काव्य सुनाओ।'

जनमेजय ने कहा, 'भगवन्, कुरुकुल की बात तो पहले बताओ। पूर्व पुरुषों की बात सुनकर मुझे बड़ा आनन्द होगा।'

वैशम्पायन ने चन्द्रवंश के चन्द्र से लेकर शन्तनु तक के पुरखों की बात जनमेजय को संक्षेप में कह सुनाई। चन्द्रवंश की अनेक शाखाओं में से पुरु की शाखा में धृतराष्ट्र तथा पाण्डु हुए। एक और यदु की शाखा भी थी जिसमें वसुदेव अक्रूर बलराम श्रीकृष्ण आदि पराक्रमी यादव वीर हुए।

जनमेजय ने पूछा, 'महाराज महर्षि द्वैपायन ने किस हेतु यह काव्य रचा? क्या कौरव पाण्डवों से इनका कोई सम्बन्ध था?'

वैशम्पायन ने कहा, 'कुरुकुल से महर्षि का बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है। सुनो, मैं पहले द्वैपायन की ही कथा कहूँगा।'

वसिष्ठ मुनि तो हम सबके पूज्य हैं। साध्वी अरुन्धती उनकी पत्नी थीं। दोनों बड़े पवित्र, बड़े संयमी, बड़े तपस्वी थे। उनके कई पुत्रों में शक्ति ज्येष्ठ थे। कल्माष-पाद राजा ने राक्षसी आवेश में आकर शक्ति तथा अन्य वसिष्ठ पुत्रों को मार डाला। वसिष्ठ जी और अरुन्धती को बड़ा दुःख हुआ। फिर भी उन्होंने कल्माषपाद को क्षमा कर दिया। सच्चे ब्राह्मण जो थे! वे शान्त स्वभाव के थे। क्रोध को उन्होंने जीता था। अपनी साधुता से कल्माषपाद को भी जीत लिया।

शक्ति के पुत्र पराशर बड़े तेजस्वी थे। उन्होंने कल्माषपाद को दण्ड देना चाहा। किन्तु वसिष्ठ जी ने उसे शान्त किया। पराक्रम से भी अधिक वीर को क्षमा शोभा देती है।

पराशर जी एक समय यमुना पार करने जा रहे थे। दाशकन्या मत्स्यगन्धा वह नाव खे रही थी। मत्स्यगन्धा को पराशर से यमुना द्वीप में पुत्र हुआ। वही महर्षि कृष्ण द्वैपायन। पराशर की कृपा से मत्स्यगन्धा की दुर्गंध दूर होकर शरीर से मधुर गंध फैलने लगी। तबसे वह योजनगंधा कहलाती थी। नाम तो था उसका सत्यवती। यह सत्यवती कौरव पाण्डवों की परदादी थी।

ययाति

अत्रि ऋषि का पुत्र था चन्द्र । इस चन्द्र से जो वंश चला वही प्रख्यात चन्द्र-वंश। इस वंश में अनेक महान राजा हुए । पुरुरवा ऐल चन्द्र के पुत्र बुध का पुत्र था। राजा पुरुरवा और अप्सरा उर्वशी की कथा प्रसिद्ध है । नहुष पुरुरवा का पौत्र था । नहुष का पुत्र ययाति बड़ा पराक्रमी था । उसने अनेक यज्ञ किए थे । उसकी कीर्ति चारों ओर फैली हुई थी ।

एक समय ययाति मृगया को निकला । गाढ़ अरण्य में उसे प्यास लगी । ढूँढ़ते-ढूँढ़ते एक कुआँ दिखाई दिया । जाकर देखा तो कुएँ में पानी ही नहीं ? परन्तु आश्चर्य की बात यह हुई कि कुएँ में एक सुन्दर युवती थी ।

आश्चर्यचकित ययाति ने पूछा, 'कौन हो तुम ? यहाँ कुएँ में कैसे गिरी ?'

युवती ने कहा, 'पहले बाहर तो निकालो । बाद में सब बताऊँगी ।' कहकर युवती ने अपना दाहिना हाथ ऊपर की ओर किया । ययाति ने उसे खींच बाहर निकाला।

युवती ने कहा, 'मैं हूँ देवयानी, दैत्यगुरु शुक्राचार्य की इकलौती पुत्री । दानव-राज वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा ने मुझे कुएँ में धकेल दिया था । अच्छा ही हुआ आप आ गये और मैं बची । किन्तु आप भी तो परिचय दीजिए।' ययाति ने अपना परिचय दिया । फिर वह राजधानी को चला गया । देवयानी ने ययाति से विवाह करने का निश्चय किया ।

फिर एक बार देवयानी ययाति की भेंट अरण्य में हुई । इस समय दानवराज वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा देवयानी की सेवा कर रही थी । देवयानी ने ययाति से विवाह का प्रस्ताव रखा और कहा, 'मुझसे ब्याह करोगे तो यह दानवराज कन्या शर्मिष्ठा भी मेरे साथ तुम्हारे आवास में आएगी ।'

ययाति ने कहा, 'मैं ब्राह्मण कन्या से विवाह करूँगा तो तुम्हारे पिता नाराज होंगे ।'

किन्तु देवयानी ने शुक्राचार्य को समझा लिया । शुक्राचार्य ने क्षत्रिय ययाति को अपनी कन्या दी । देवयानी के साथ शर्मिष्ठा भी ययाति के नगर में गई । ययाति ने शर्मिष्ठा से गुप्त विवाह कर लिया । शुक्राचार्य और देवयानी के डर से वह इस बात को प्रसिद्ध न कर सका । देवयानी को यदु और तुर्वसु दो पुत्र हुए । शर्मिष्ठा को अनु, द्रुह्यु तथा पुरु तीन पुत्र हुए । यह जानकर देवयानी रूठकर शुक्राचार्य के पास चली गई । शुक्र ने कहा, 'ययाति बड़ा विलासी है । वह अकाल ही वृद्ध हो जाएगा ।' ययाति अकाल वृद्ध हो गया । ययाति के क्षमा माँगने पर शुक्राचार्य ने शाप का वारण किया। तदनुसार ययाति के पुत्र पुरु ने अपना यौवन पिता को दिया । पिता ने पुरु को राजा बनाया । पुरु के वंश में पाण्डव हुए । यदु के वंश में यादव ।

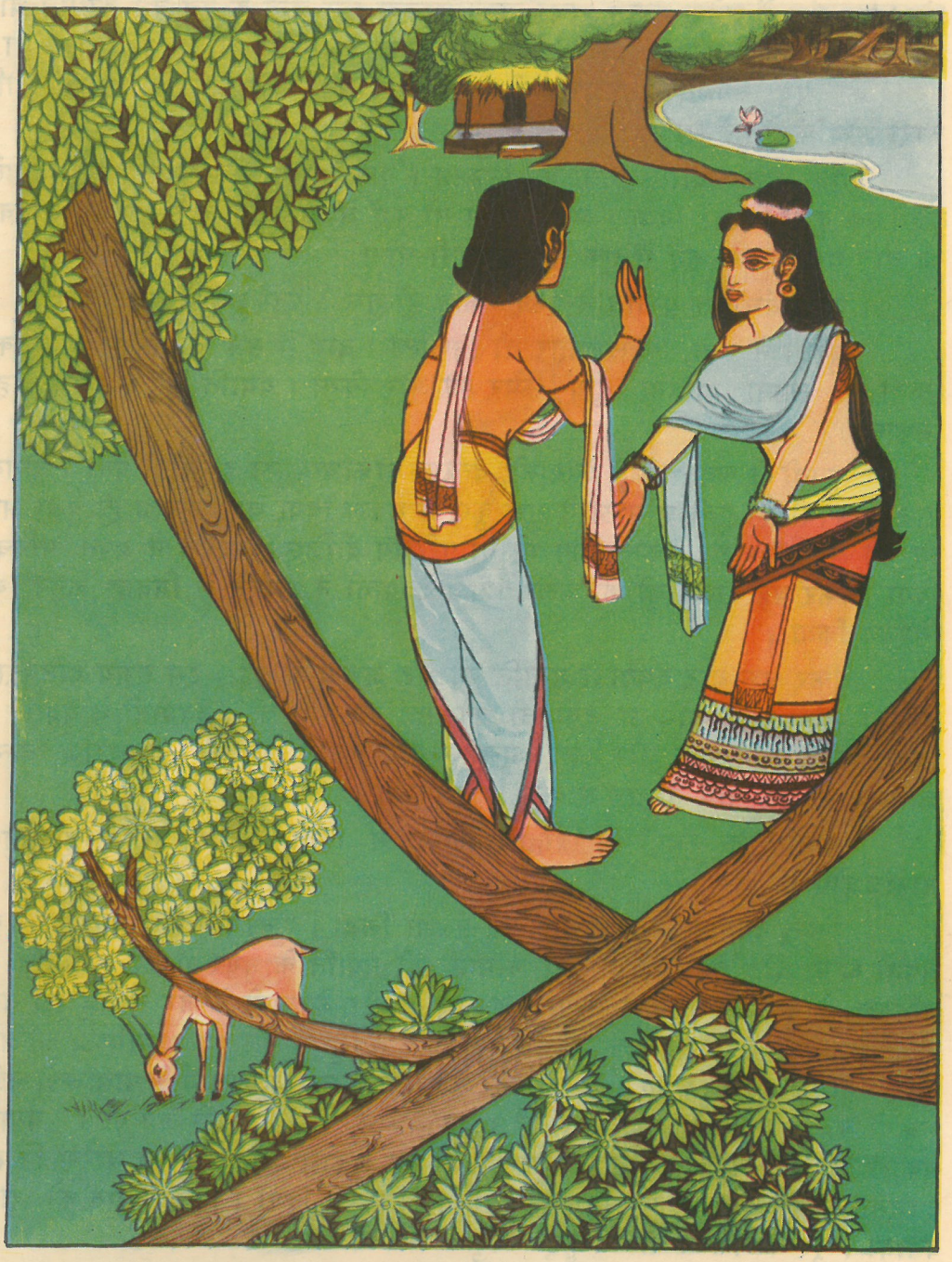

कच-देवयानी

जनमेजय ने पूछा, 'भगवन्, यह विवाह हुआ कैसे ? ययाति तो क्षत्रिय था और देवयानी ब्राह्मण कन्या । क्यों उसने किसी ऋषि से विवाह करना पसन्द न किया ?'

'यह एक और ही कहानी है ।' वैशम्पायन ने कहा, 'सुनो । कश्यप ऋषि की दो पत्नियाँ अदिति और दनु थीं । अदिति के पुत्र आदितेय देव थे और दनु के दानव । देव और दानवों के बीच हमेशा झगड़ा छिड़ा रहता । देव बलवान थे । वे दानवों को मार तो देते किन्तु दानव मरते न थे । देव सोच में पड़े, 'ये दानव तो मरते ही नहीं । इनको जीता कैसे जाय ?'

देवगुरु बृहस्पति ने कहा, दानवों के गुरु शुक्राचार्य के पास संजीवनी विद्या है जिससे वे मरे हुए दानवों को पुनर्जीवित करते हैं । अगर हममें से कोई यह विद्या सीख आए । किन्तु यह बड़ी कठिन बात है ।

यह सुनकर बृहस्पति के पुत्र कच ने कहा, 'पिताजी, मैं यह कठिन काम करूँगा । शुक्र गुरु से संजीवनी सीख लाऊँगा ।' कच पिता की आज्ञा और आशीर्वाद पाकर पहुँचा शुक्राचार्य के आश्रम में । शुक्र गुरु देवों की युक्ति समझ गए । फिर भी कच जैसे जिज्ञासु शिष्य को मना भी कैसे करते ? कच शुक्र के आश्रम में रहने लगा । शुक्र पुत्री देवयानी कच को देख प्रसन्न हुई । वह कच की हर प्रकार की सुविधा देखती किन्तु शुक्र ने अभी तक कच को संजीवनी सिखाई न थी ।

देवों की युक्ति से दानव डर गए थे । उन्होंने सोचा, 'कच को ही क्यों न मार डालें ? न रहेगा बाँस न बजेगी बाँसुरी ।' दानवों ने कच को मार डाला । पर देवयानी के आग्रह से शुक्राचार्य ने उसे पुनर्जीवित कर दिया । फिर भी ऐसा ही हुआ । अब दानवों ने कच को मार कर जला दिया और मधु के साथ उस भस्म को मिलाकर शुक्राचार्य को पिला दिया । शुक्र बुरी तरह फँसे । देवयानी को अगर प्रसन्न करना है तो उदरस्थ कच को संजीवनी सिखाकर ही बाहर निकालना होगा । शुक्र ने वही किया । कच जीवित हुआ, स्वयं भी जीवित रह सके ।

कच की साधना पूरी हुई । गुरु की अनुज्ञा माँग वह स्वर्ग को निकला । देवयानी ने अपना हृदय कच के सामने खोला । वह कच से ब्याह करना चाहती थी ।

कच ने कहा तुम्हारे पिता के उदर से मेरा जन्म हुआ । तुम मेरी सहोदरा हुई । हमारा ब्याह नहीं हो सकता । निराशाजनित क्रोध से देवयानी ने कहा, 'तुम्हारी विद्या निष्फल जाएगी ।'

कच ने कहा, 'तुम कामवश विवेक भूली हो, अतः कोई ऋषि तुमसे ब्याह न करेगा ।'

इसीलिए देवयानी ययाति से ब्याही ।

शकुन्तला

पुरु के वंश में दुष्यन्त नामक राजा हुआ । एक समय दुष्यन्त मृगया को निकला । वन में मालिनी नदी के किनारे ऋषि कण्व का आश्रम था । दुष्यन्त ऋषि-मुनियों का आदर करने वाला था । उसने सारथि से कहा, चलो चलें आश्रम में । पुण्यात्माओं के दर्शन से पवित्र होंगे । रथ आश्रम में आया । छोटे-छोटे मुनिबाल और मृग कूतूहल से रथ को देखने लगे । राजा को पता चला कि महर्षि कण्व समिधा लेने के लिए वन में गये हुए हैं !

महर्षि की पुत्री शकुन्तला ने राजा का बड़ा सत्कार किया । परस्पर की इच्छा से दुष्यन्त और शकुन्तला ने गान्धर्व विधि से विवाह कर लिया । कुछ समय के उपरान्त राजा अपनी राजधानी को लौटा । शकुन्तला उस समय गर्भवती थी ।

कण्वमुनि ने समाधि से शकुन्तला और दुष्यन्त के गान्धर्व विवाह की बात जान ली । वे बड़े प्रसन्न हुए । आखिर स्वर्ण से रत्न का संयोग हुआ था । शकुन्तला राजर्षि विश्वामित्र और अप्सरा मेनका की पुत्री थी । कण्व ने उसे पाला पोसा था । कण्वाश्रम में शकुन्तला ने दुष्यन्त के पुत्र को जन्म दिया । उसका नाम था भरत । किन्तु आश्रम के चारों ओर हिंस्र पशुओं को भी वह वश में ले सकता था । इसलिए सब उसे सर्व-दमन के नाम से पुकारते थे । भरत जब कुछ बड़ा हुआ तो कण्व ने शकुन्तला को पति के पास भेजा । साथ में कुछ मुनिकुमार आदि भी भेजे ।

मुनिगण शकुन्तला को लिए राजसभा में पहुँचे । कहा, 'राजन् स्वीकार करो अपनी धर्मपत्नी को ।'

राजा ने कहा, 'मैं तो इस युवती को जानता तक नहीं । इस तरह गले पड़ना ठीक नहीं ।'

शकुन्तला ने अनेक प्रसंगों का स्मरण कराया पर राजा ने एक भी बात नहीं मानी । शकुन्तला स्वमान भंग न सह सकी । उसने क्रोध में राजा से कहा, 'राजन्, प्रजापालक होकर यदि आप ही असत्य आचरण करेंगे तो प्रजा की क्या स्थिति होगी ? अपने ही इस पुत्र का निषेध करके आप अपने कल्याण का निषेध कर रहे हैं ।'

दुष्यन्त ने कहा, 'शकुन्तले मैंने तुम्हारे सच्चेपन की कसौटी की । तुम उसमें उत्तीर्ण हुईं । मैं तुम्हारा पत्नी के रूप में अभिनन्दन करता हूँ ।' राजा को भी अपने आचरण की योग्यता प्रमाणित करनी चाहिए ।

राजरानी बनी हुई शकुन्तला का पुत्र भरत आगे चलकर महान् सम्राट् बना । उसने अनेक यज्ञ किये । उसी के नाम से इस देश का नाम 'भारत' प्रसिद्ध हुआ ।

शन्तनु

पुरुवंश में भरत के बाद कुछ समय के उपरान्त कुरु नामक विख्यात राजा हुआ। उसके पीछे यह प्रदेश कुरुदेश के नाम से पहचाना जाने लगा। पुरुवंश भी कुरु के नाम से कुरुवंश कहलाने लगा।

कुरुवंश में प्रतीप राजा हुआ। प्रतीप के तीन पुत्र देवापि, शन्तनु और बाह्लीक थे। ज्येष्ठ देवापि स्वभाव से शान्त था। वह तपस्वी बना। अतः प्रतीप के बाद शन्तनु राजा बना। शन्तनु इतना धार्मिक था कि जिस किसी के शरीर को वह छूता उसकी पीड़ा शान्त हो जाती। अतः वह 'शन्तनु' नाम से प्रसिद्ध हुआ।

राजा प्रतीप वानप्रस्थ होकर जब हस्तिनापुर से वन को चले तो उन्होंने शन्तनु से कहा, 'पुत्र मैंने तुम्हारे लिए एक कन्या निश्चित कर रखी है। बड़ी ही योग्य और सुन्दर है वह। वह तुम्हें मिलेगी। उससे ब्याह करना। उसकी सब शर्तें स्वीकार करना।' शन्तनु ने पिता की आज्ञा मान ली।

एक दिन शन्तनु गंगा के किनारे घूमने निकला। वहाँ एक सुन्दर युवती मानो उसकी प्रतीक्षा कर रही थी। वह गंगा थी। राजा ने समीप जाकर पूछा, 'देवि' कौन हो तुम?'

युवती ने कहा, 'मैं गंगा हूँ। तुम्हारे पिता को मैंने वचन दिया है कि मैं तुमसे ब्याह करूँगी। किन्तु एक शर्त पर। भला या बुरा जो भी कुछ मैं करूँगी आप उसमें दखल न देंगे और नहीं तो मैं आपको छोड़ चली जाऊँगी।'

शन्तनु ने शर्त मान ली। गंगा ने शन्तनु से ब्याह कर लिया। जैसी स्वरूपवती थी गंगा, वैसी ही गुणवती भी थी। वह अच्छे-अच्छे व्यंजन बनाती, मधुर कण्ठ से गाती, मनोहारी नृत्य करती, राजकाज में सहायता करती। राजा शन्तनु गंगादेवी से बहुत प्रसन्न थे।

परन्तु एक विचित्र घटना बार-बार घटी। गंगा को सात पुत्र हुए। जन्म होते ही पुत्र को गंगा नदी पर ले जाती। फिर, 'जाओ, खुश रहो' बोलकर पुत्र को नदी में बहा देती। राजा शन्तनु इस बात पर मन-ही-मन बड़े सन्तप्त थे। किन्तु गंगा के छोड़ जाने के डर वे से कुछ कह न सके। किन्तु अब शन्तनु की सहनशीलता की मर्यादा आ गई। गंगा को आठवाँ पुत्र हुआ। हँसती हुई गंगा इस पुत्र को लेकर नदी की ओर चली। शन्तनु से न रहा गया। झपटकर गंगा को पकड़ा। कहा, 'डायन, क्यों इस तरह पुत्रों को मारती हो?'

गंगा ने कहा, 'बस, अब मैं जाऊँगी। आपने हमारी शर्त तोड़ दी है। इस पुत्र को मैं ले जा रही हूँ। वयस्क होने पर आपको सौंप दूँगी।' कहकर गंगा चली गई।

वसुओं को शाप

शन्तनु ने गंगा को रोककर कहा, 'ठहरो, यह तो बताओ कि सात पुत्रों को तुमने मारा क्यों ? क्या माँ के दिल में कुछ भी न हुआ ?'

गंगा ने कहा, 'कोई भी माता इतनी क्रूर हो सकती है, राजन् ! मैंने पुत्रों को मारा नहीं । उनको मैंने मानव-शरीर से मुक्त कर दिया । वे सब वसु नामक देव थे । शापवश उन्हें मनुष्य-जन्म लेना पड़ा था । आठ वसुओं में कनिष्ठ इस द्यु वसु के अपराध के कारण महर्षि वसिष्ठ ने उनको शाप दिया था । निरपराध सात तो मुक्त होगए । वह आठवाँ वसु है ।

शन्तनु ने पूछा, 'ऐसी क्या बात थी ? फिर वे तुम्हारे ही पुत्र क्यों हुए ?'

गंगा ने कहा, 'स्वर्ग के देवों में अष्ट वसु देव हैं । सबसे छोटे वसु का नाम है द्यु । वही द्यु है तुम्हारा यह पुत्र । एक समय अष्ट वसु सपत्नीक वसिष्ठ के आश्रम के पास विहार कर रहे थे । वसिष्ठ जी की गाय नन्दिनी वहाँ चर रही थी । साक्षात कामधेनु थी वह । जो भी कोई उसका दूध पीता, उसका वृद्धत्व नष्ट हो जाता ।

द्यु वसु की पत्नी ने कहा, 'कितनी सुन्दर है यह गाय ! कितना अच्छा हो यदि यह हमारे पास हो !'

द्यु ने कहा, 'हम देवों को गाय की क्या जरूरत ? स्वर्ग में कल्पवृक्ष जो है । उससे हमें मनवांछित सब कुछ मिल जाता है । ऋषि के लिए गाय बड़ी उपयुक्त है । गाय उन्हें यज्ञ के लिए उपयुक्त घी दूध आदि देती है।'

द्यु पत्नी ने कहा, 'आप चाहे कितनी भी गायें वसिष्ठ जी को दीजिए । यह गाय तो मुझे चाहिए ही । भूलोक में मेरी सखी राजकन्या जितवती है । मैं यह गाय देकर उसे चिर युवा बनाना चाहती हूँ ।'

पत्नी की हठ के आगे द्यु झुक गया । परिणाम का सोच-विचार किए बिना वह गाय को उठा ले गया । जब महर्षि जी को यह बात मालूम हुई तो वे सोचने लगे, 'अरे ! देव होकर ये वसु मनुष्य की तरह मोहान्ध अविचारी बनते हैं । यह तो मर्यादा के बाहर की बात हुई । इन सबको मनुष्य जन्म लेकर दुःख भोगने दो ।

वसुओं ने महर्षि जी से क्षमा माँगी । महर्षि जी ने कहा, 'मानव जन्म तो तुमको लेना पड़ेगा । किन्तु तुम सात निरपराध वसु तुरन्त मुक्त हो जाओगे । यह 'द्यु' मनुष्य-जन्म के सुख-दुःख लम्बे अर्से तक भोगेगा । कुरुवंशीय पवित्र शन्तनु और गंगा तुम्हारे जनक-जननी बनेंगे ।

गंगा ने वसुओं की माता बनना स्वीकार किया ।

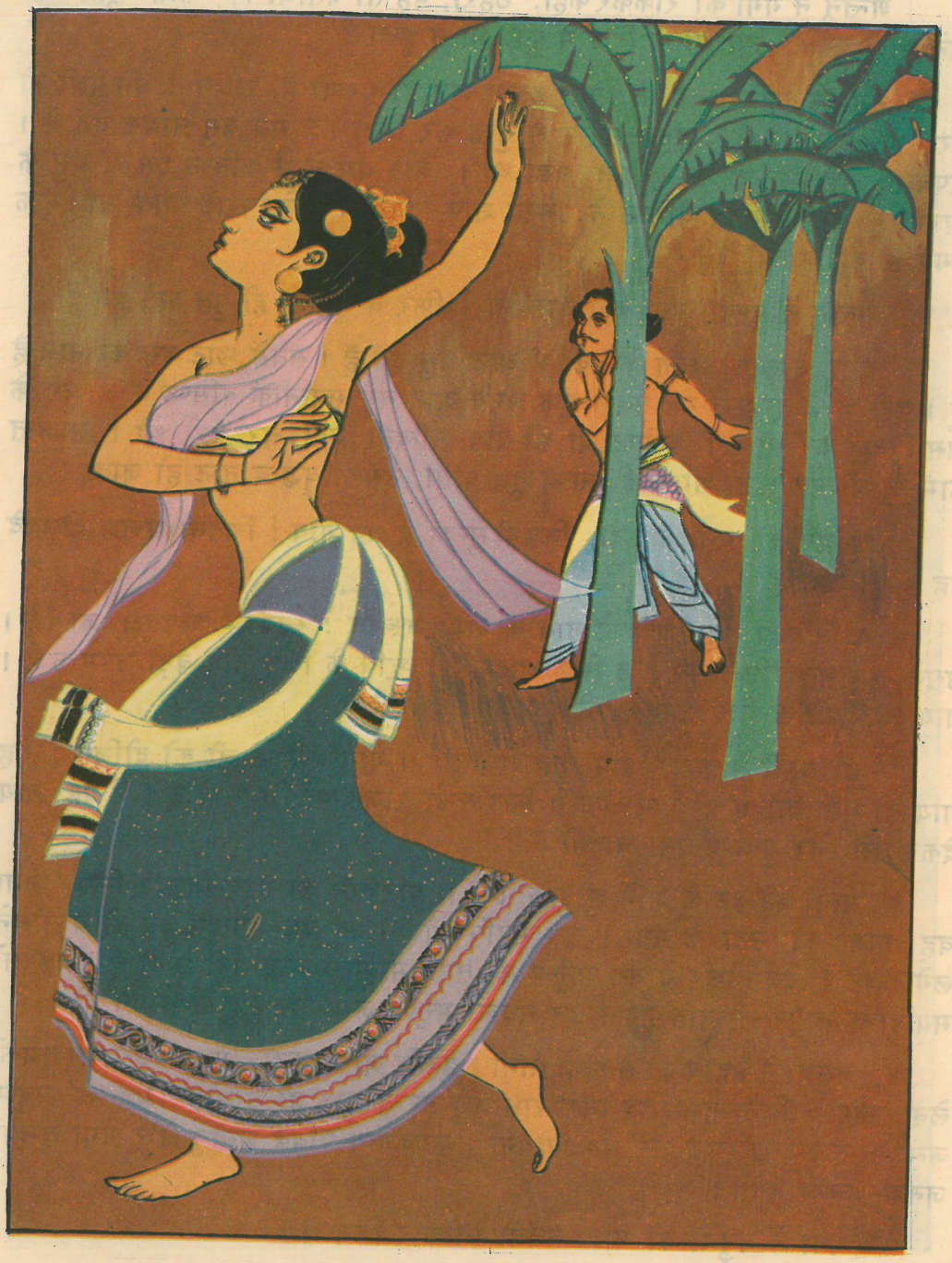

देवव्रत

वैशम्पायन ने आगे कहा, गंगा उस आठवें वसु-पुत्र को डुबो देने वाली तो थी नहीं। पर अब शन्तनु से उसके सम्बन्ध का निमित्त पूरा हो गया था। अब उसे जाना ही था। शन्तनु से छूटने की यह तो युक्ति मात्र थी। किन्तु बाप का जी हाथ न रहा, इससे उसने गंगा को रोका। गंगा से पूरी बात सुनकर अब वह पछताया। गंगा उसे छोड़े जा रही थी। गंगा को भी वियोग का दुःख था, किन्तु वह भावुकता से कर्तव्य को ऊँचा समझती थी।

गंगा ने कहा, 'इस पुत्र को सब विद्याएँ सिखाकर मैं आपको सौंप दूँगी। आप धीरज धरिएगा।'

यह अष्टम वसु गंगा का पुत्र होने के कारण गांगेय नाम से परिचित हुआ। शन्तनु के पीछे वह शान्तनव भी कहलाता था, यद्यपि नाम तो था उसका देवव्रत। ग्यारह वर्ष का होने पर गंगा ने देवव्रत को यज्ञोपवीत देकर गुरुओं के पास अध्ययन के लिए भेजा। वसिष्ठ जी ने उसे वेद-विद्या पढ़ाई। बृहस्पति और शुक्राचार्य ने राज-नीति का शिक्षण दिया। राम जामदग्न्य ने उसे युद्ध-विद्या सिखाई।

एक दिन गंगा किनारे घूमते हुए शन्तनु ने देखा कि नदी की धार अकस्मात् खूब पतली हो गई है। आगे चलकर देखा तो एक सुन्दर कुमार तीर चला रहा था। उसने तीरों का बाँध-सा बनाकर नदी के प्रवाह को रोक लिया था। राजा को यह देख बड़ा आश्चर्य हुआ। राजा को उस कुमार की मुद्रा भी परिचित-सी लगी, किन्तु याद नहीं आ रहा था।

राजा ने गंगा को बुलाकर पूछा, 'कहाँ है हमारा पुत्र ?' गंगा ने देवव्रत को दिखाकर कहा, 'यह है आपका पुत्र। बेटे'पिता को प्रणाम करो।' पुत्र को लेकर प्रसन्न शन्तनु हस्तिनापुर आए। कुरुकुल के लोग देवव्रत को देख प्रसन्न हुए। देवव्रत युवराज बना। कुरुवृद्ध कहते थे, 'बड़ा होकर यह देवव्रत उत्तम शासक सिद्ध होगा।'

अब शन्तनु ने राज्यधुरा का भार देवव्रत को सौंप दिया। देवव्रत कुशल शासक था। अजेय योद्धा था। कुरुराज्य का विस्तार हुआ। लोग सम्पन्न बने।

एक दिन राजा शन्तनु यमुना-तट पर विहार करने गए। वहाँ से लौटे तो वे उदास थे। पिता को उदास देखकर देवव्रत को बड़ा दुःख हुआ। सोचा, 'पिताजी पहले की तरह प्रसन्न नहीं हैं। क्या कारण होगा उनकी उदासी का ! किससे पूछा जाय ?'

अन्त में देवव्रत ने पिता से ही सब बात जान लेने का निश्चय किया।

देवव्रत पहुँचा पिता के पास।

सत्यवती

पिता के पास जाकर प्रणाम करके देवव्रत विनय से खड़ा रहा। पिता ने आशीर्वाद दिया। स्नेह से सहलाया।

नम्रता से देवव्रत ने कहा, 'एक बात पूछूँ पिताजी ? आप पहले की तरह प्रसन्न नहीं रहते, क्या बात है ?' फिर चिन्तित भाव से कहा, 'क्या मैं जान सकता हूँ ?'

शन्तनु पुत्र की इस भावना से प्रसन्न होकर बोले, 'तुम्हें नहीं तो और किसे बताऊँगा पुत्र ! पर अभी तुम छोटे हो। मेरी बात नहीं समझोगे। फिर भी सुनो, तुम मेरे इकलौते बेटे हो। क्षत्रिय के लिए एक ही पुत्र का होना कभी-कभी दुःखदायक बन जाता है। युद्ध हमारा धर्म है। युद्ध में अगर कुछ हो गया तो ? यही मेरी चिन्ता है।'

देवव्रत पूरी बात समझ न सका। उसने सोचा, 'मंत्री जी से ही क्यों न पूछा जाए।' वह पहुँचा मन्त्री के पास। पूछा 'मन्त्री जी, आजकल पिताजी उदास क्यों रहते हैं ? क्या आप कुछ जानते हैं ?'

मन्त्री ने कहा, 'तुम उनके इकलौते बेटे हो यही उनकी चिन्ता है। यद्यपि और भी कुछ बात है। राजा इसीलिए आजकल इतने उदास हैं।'

देवव्रत ने कहा, 'तो आप वह बात मुझसे अवश्य कहिए। पिताजी की उदासी मुझसे सही नहीं जाती।'

'धन्य हो तुम।' मन्त्री ने कहा, 'सुनो, राजा यमुना-किनारे विहार करने गए थे। तब से लेकर उनकी यह दशा हुई है। यमुना-किनारे उन्होंने दूर से बड़ी मधुर गंध आती परखी। गन्ध का अनुसरण करते उन्होंने कुछ दूरी पर एक अति रूपवती धीवर कन्या को नाव की पतवार लिए खड़ा देखा। उसी की देह से मधुर सौरभ निकल रही थी।'

राजा ने पूछा, 'कौन हो तुम ?' प्रणाम करते हुए धीवर कन्या ने कहा, 'मैं दाशराज की कन्या सत्यवती हूँ। यात्रियों को नदी-पार कराने का धर्मकार्य पिता ने मुझे सौंपा है। इसलिए यहाँ हूँ।'

राजा ने सोचा, 'धीवर कन्या नहीं है यह।' उसने दाशराज से पूछा तो पता चला कि वह एक अप्सरा की पुत्री है। राजा ने उस कन्या से विवाह करने की इच्छा प्रकट की। दाशराज ने कहा, 'ठीक ही तो है। आप जैसा दामाद कहाँ मिलेगा। पर मेरी कन्या के पुत्र को राजा बनाना होगा।'

'शन्तनु इस शर्त को स्वीकार न कर सके। गांगेय देवव्रत के अधिकार को वे छीनना न चाहते थे। इसलिए वे उदास घर लौटे। तब से उनकी यह स्थिति है।' मन्त्री ने कहा।

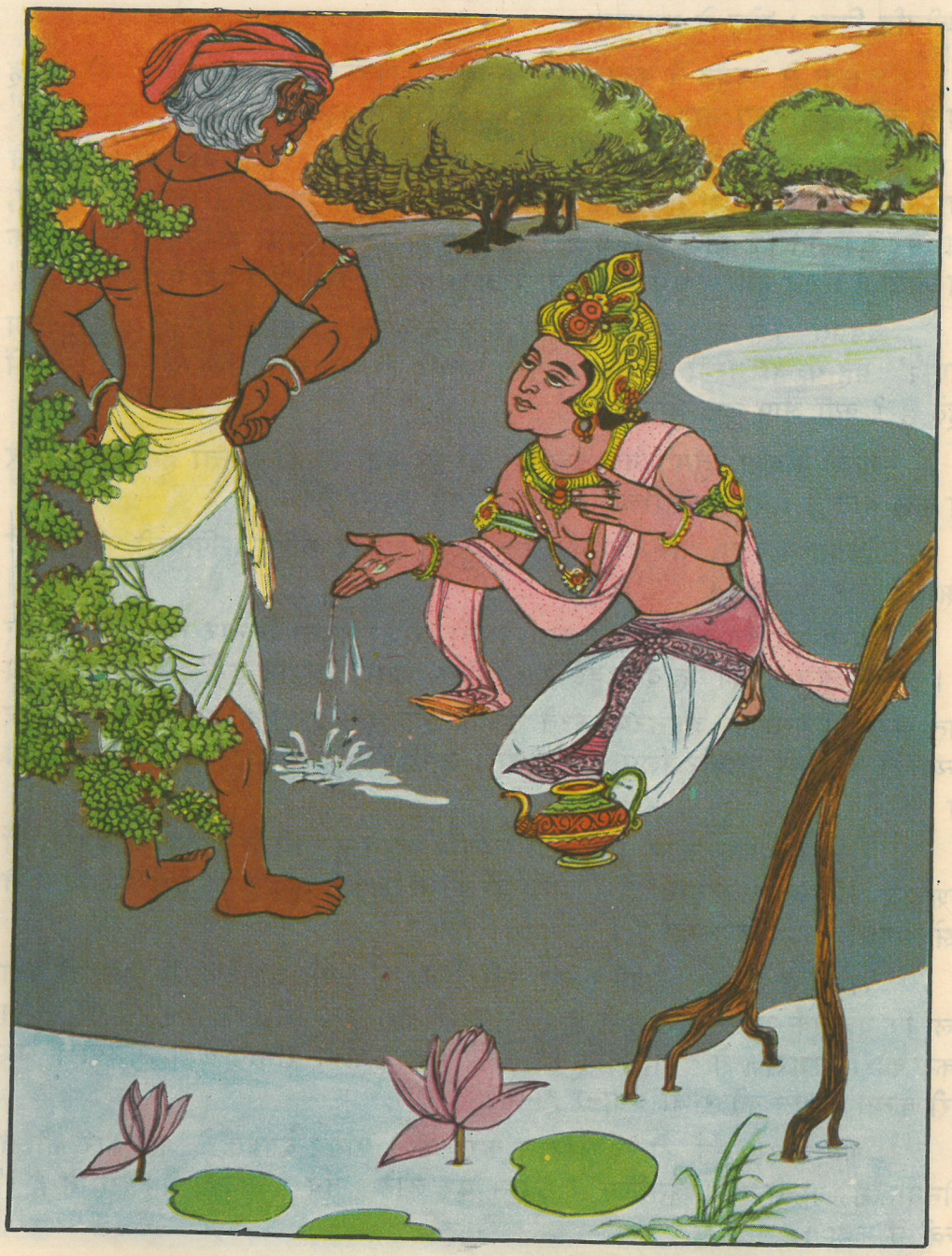

भीष्म

मन्त्री की बात सुनकर देवव्रत सोच में पड़ गया, 'अहो' कैसे महान हैं मेरे पिता ! मेरे लिए अपनी प्रिय बात उन्होंने छोड़ दी । तो अब मेरा क्या कर्त्तव्य है ? राज्य तो सामान्य लाभ है । पिताजी की सेवा करने का ऐसा अवसर कब मिलेगा ?

देवव्रत पहुँचा धीवरराज के पास । दाशराज ने उसका सत्कार किया । फिर पूछा, 'कहिए कैसे पधारना हुआ कुमार ?'

देवव्रत ने कहा, 'धीवरराज, पिताजी आप से मिले थे । इसी बात को लेकर मैं आया हूँ ।'

दाशराज ने कहा, 'मैंने सब बात स्पष्ट कर दी है । किन्तु राजाजी आपका अधिकार छीनना नहीं चाहते । धन्य हो कुमार, जो तुम्हें ऐसे पिता का पुत्र होने का सौभाग्य मिला है ।'

देवव्रत ने कहा, 'दाशराज, किसी भी कीमत पर मैं पिताजी को सुखी करना चाहता हूँ । मैं स्वयं अपना राज्याधिकार छोड़े देता हूँ ।'

'धन्य हो कुमार, धन्य हैं राजा शन्तनु जिनको ऐसा पुत्र मिला । फिर भी मेरा मन नहीं मानता ।' धीवरराज ने कहा ।

'आपके मन में जो भी कुछ है कह दीजिए ।' देवव्रत ने कहा ।

'मुझे तुम्हारे वचन में पूरी श्रद्धा है, कुमार ।' दाशराज ने कहा, 'तुमने तो अपना अधिकार छोड़ दिया । किन्तु कल कहीं तुम्हारे पुत्रों ने यदि यह दावा पेश किया तो क्या होगा ?'

'ठीक है दाशराज, मैं विवाह न करने की प्रतिज्ञा करता हूँ । मैं जीवन भर ब्रह्मचारी बना रहूँगा । अब आप निःशंक होकर अपनी कन्या का ब्याह कीजिए ।'

चारों ओर से धन्यवाद शब्द सुनाई देने लगे । ऐसी प्रतिज्ञा देवव्रत ही कर सकता था । सत्यवती को अपार हर्ष हुआ । देवव्रत अपनी नयी माता को लिए हस्तिनापुर आया । सब बात सुनकर शन्तनु गद्‌गद हो गए । कहने लगे, 'भगवान की कितनी बड़ी कृपा है कि मुझे ऐसा पुत्र मिला ।' फिर देवव्रत से कहा, 'तुम मुझसे कुछ माँगो ।'

'आपका सुख ही मेरा सुख है । मुझे और क्या चाहिए ?' देवव्रत ने कहा ।

शन्तनु ने कहा, 'मेरा आशीर्वाद है, तुम इच्छा-मृत्यु वरोगे । तुम सचमुच भीष्म हो । लोग तुम्हारी पूजा करेंगे ।'

तब से देवव्रत भीष्म के नाम से पहचाने जाने लगे ।

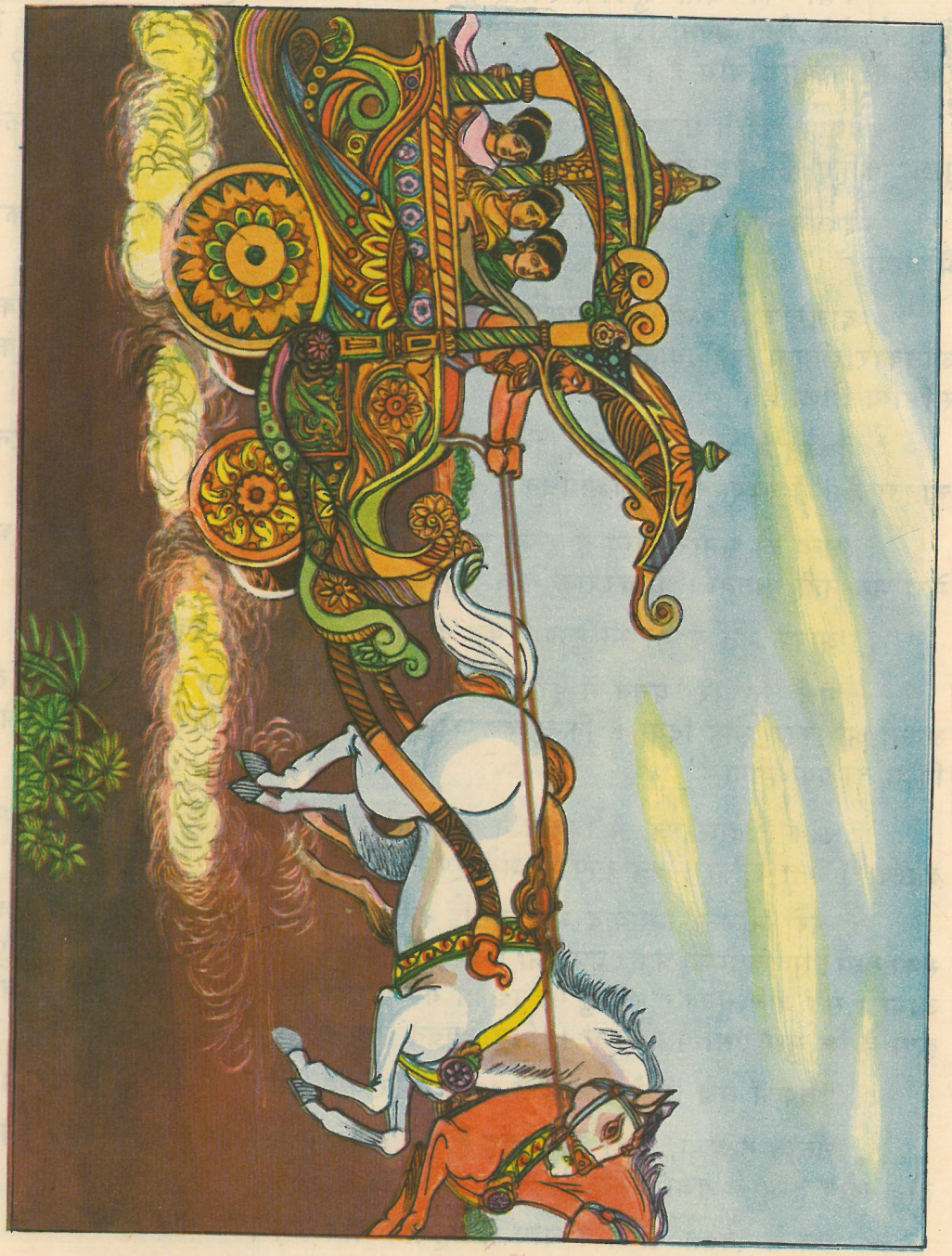

काशिराज की कन्याएँ

शन्तनु से सत्यवती के दो पुत्र चित्रांगद और विचित्रवीर्य हुए। विचित्रवीर्य अभी बालक ही था कि शन्तनु की मृत्यु हुई। भीष्म ने चित्रांगद का राज्याभिषेक किया।

कुछ समय के बाद शन्तनु-पुत्र चित्रांगद का गन्धर्वराज चित्रांगद से युद्ध छिड़ गया। दोनों चित्रांगद वीर थे। तीन वर्ष तक लड़ते रहे। वीर शन्तनु पुत्र चित्रांगद पराक्रम करते वीरगति को प्राप्त हुआ। कुरुकुल शोकमग्न हो गया। भीष्म ने धैर्यपूर्वक बालक विचित्रवीर्य का राज्याभिषेक किया। उसके नाम पर राज-काज वहन करने लगे। माता सत्यवती की भी सलाह लिया करते।

कुछ ही समय में विचित्रवीर्य सुन्दर युवक बन गया। अब वह स्वयं राजकाज देखने लगा।

एकदिन सत्यवती ने देवव्रत से कहा, 'देखो भाई, विचित्रवीर्य अब वयस्क हुआ है। कोई अच्छा स्थान देखकर अब उसका विवाह कर देना चाहिए।

भीष्म ने कहा, 'ठीक है, माँ। सुनता हूँ काशी के राजा की तीन कन्याओं का स्वयंवर होने जा रहा है। यदि आप चाहें तो ले आऊँ तीनों को।'

सत्यवती ने कहा, 'क्षत्रिय के लिए ऐसा विवाह उचित है। तुम अवश्य काशी जाओ।'

भीष्म सज्जित होकर काशी गए। स्वयंवर में अनेक राजा आए हुए थे। भीष्म को देखकर सबको कुछ आश्चर्य हुआ। राजकन्याएं स्वयंवर-मंडप में आईं। एक के बाद एक राजा का परिचय उन्हें दिया जाता था। भीष्म का परिचय सुनकर उन्होंने देखा, वे वृद्ध थे। कन्याएँ आगे बढ़ीं। सब राजा हँस दिये, 'आये थे बड़े ब्याह करने।'

यह सुनकर भीष्म की आँखें लाल हो गईं। सबके देखते ही देखते उन्होंने तीनों कन्याओं को उठाकर रथ में ढकेल दिया। फिर राजाओं को ललकारा, 'आ जाओ अगर बाहुओं में बल है।'

सब राजा एक साथ भीष्म पर टूट पड़े, किन्तु कुछ ही क्षणों में भीष्म ने सबको परास्त कर दिया। लजाकर सब हट गए।

तब पीछे से सौभ देश का राजा शाल्व आ गया। भीष्म को ललकारकर वह बाणों की बौछार करने लगा। सब राजा भी उन दोनों का रोमांचक युद्ध देखते ही रह गए। किन्तु भीष्म से कौन लड़ सकता था! शाल्व पराजित हो लौट गया। भीष्म कन्याओं को लेकर हस्तिनापुर आए। अम्बा की विनती पर उसे फिर शाल्वराज के पास पहुँचा दिया। अम्बिका और अम्बालिका विचित्रवीर्य से विवाह करके सुख चैन से रहने लगीं।

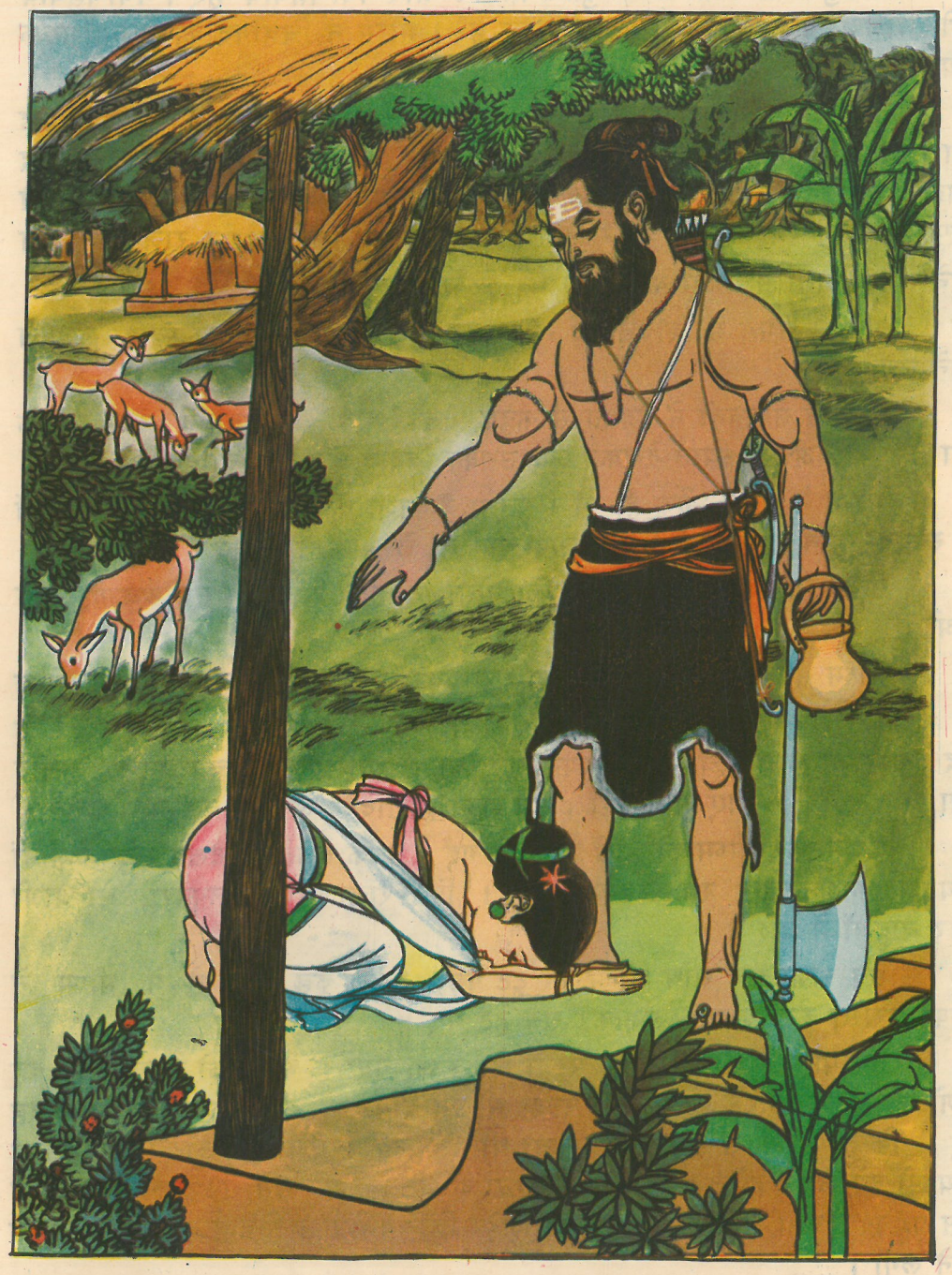

परशुराम की शरण में

ब्राह्मणों के साथ अम्बा हस्तिनापुर से निकली। कुछ ही दिनों में वह शाल्व के पास पहुँची। पर अम्बा के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। शाल्व को उसका आगमन पसन्द न आया था।

अम्बा ने कहा, 'पहले से ही हम दोनों का निश्चय था विवाह करने का। सो मैं आ गई हूँ। भीष्म ने मेरी बात मान ली। अब हम सुखपूर्वक विवाह करेंगे।'

शाल्व ने कहा, 'यह कैसे हो सकता है। अन्य द्वारा हरण की गई कन्या से क्या कोई क्षत्रिय विवाह करेगा? यह तो क्षत्रिय-कुलाचार के विरुद्ध बात होगी। अब मैं तुमसे विवाह न करूँगा। तुम हस्तिनापुर लौट जाओ।'

'पर भीष्म ने स्वेच्छा से मुझे तुम्हारे पास आने की अनुमति दी है।' अम्बा ने अनुरोध किया, 'मुझसे विवाह करने में अब तुम्हें कोई दोष न लगेगा।'

बेचारी अम्बा! जड़मति शाल्व उसकी भावनाओं को न समझा। वह तो एक ही बात पर अटल था, 'तुम हस्तिनापुर लौट जाओ।'

अम्बा ने कई तरह से मिन्नतें कीं। शाल्व को समझाने के अनेक प्रयत्न किए। किन्तु सब निष्फल! असहाय अम्बा का करुण रुदन भी शाल्व को पिघला न सका।

अब क्या हो? पिता के घर जाना उचित न था। स्वयंवर में अपहरण जो हुआ था। भीष्म के पास भी कैसे जाती वह? स्वयं ही अनुज्ञा माँग शाल्व के पास जो आई थी। और यह अविचारी शाल्व तो उसे ठहरने तक न देता था। अम्बा बड़े संकट में फँस गई। रोते-रोते वह लौट चली।

रास्ते में मुनि शैखावत्य के आश्रम में उसने रात्रिवास किया। अम्बा ने मुनि जी से कहा, 'भगवन् मैं दुखियारी हूँ। व्रत-तप से मुझे शान्ति मिलेगी। मैं यहाँ रहूँगी।'

शैखावत्य ने कहा, 'बेटी, तुम कोमल राजकन्या हो। मुनियों के कठोर आचार तुमसे नहीं पाले जायेंगे।'

तभी मुनि होत्रवाहन वहाँ आये। वे अम्बा के नाना लगते थे। दौहित्री का दुःख जानकर उन्होंने परशुराम की सहायता लेने की सलाह दी जो उन्हें मिलने आने वाले थे।

दूसरे दिन जामदग्न्य परशुराम वहाँ आए। गौर देह पर श्याम मृगचर्म। हाथ में भयानक परशु और धनुष। मानो वेद-विद्या क्षात्र रूप लेकर आई हो। होत्र-वाहन ने अपनी दौहित्री की कहानी बताई।

परशुराम ने कहा, 'अम्बा की जो इच्छा हो, मैं करूँगा।'

अम्बा ने कहा, 'भीष्म ही मेरे दुःखों की जड़ है। उसको समझाइए।'

दूसरे दिन अम्बा को लेकर परशुराम कुरुक्षेत्र को चले।

अम्बा के कारण गुरु-शिष्य संग्राम

कुरुक्षेत्र पहुँचकर परशुराम ने भीष्म को संदेश भेजा, 'आवश्यक कार्य से आया हूँ। शीघ्र ही मिलो।'

भीष्म प्रसन्न हो उठे। कई वर्षों के बाद आचार्य से भेंट होगी। अर्घ की सामग्री लिए वह कुरुक्षेत्र पहुँचे। आचार्य को प्रणाम किया। अर्घदान दिया। फिर हाथ जोड़कर विनयपूर्वक आगमन का कारण पूछा।

परशुराम ने कहा, 'गांगेय, तुम्हें देख मैं बड़ा प्रसन्न हुआ हूँ। अब तुम अम्बा को स्वीकार करो और मेरा आशीर्वाद प्राप्त करो।'

भीष्म ने कहा, 'मैंने अम्बा को उसी की इच्छानुसार शाल्व के पास भेज दिया था उसकी दो बहनें यहाँ सुखपूर्वक हैं। वे विचित्रवीर्य से ब्याही गई हैं। और फिर आप तो जानते ही होंगे कि मैंने नैष्ठिक ब्रह्मचर्य की प्रतिज्ञा ली है। अब प्रतिज्ञा से विचलित होना उचित न होगा।'

परशुराम ने कहा, 'गांगेय तुम स्वयंवर से इस कन्या को उठा क्यों लाये? अब तो इससे ब्याह करना तुम्हारा धर्म हो गया। धर्म से विचलित होओगे तो मेरे क्रोध का पात्र बनोगे। क्षत्रियान्तक जामदग्न्य को तो तुम जानते ही हो।'

भीष्म ने धैर्य से उत्तर दिया, 'भगवन् प्रतिज्ञा तो मेरी नहीं टूटेगी। इसके लिए परिणाम जो चाहे मुझे भुगतना पड़े। आप तो मेरे आचार्य हैं। प्रतिज्ञा छोड़ने की बात आपके मुख से कैसे निकली?'

क्रोध में आकर परशुराम ने कहा, 'ठीक है, तो युद्ध करोगे मुझसे। कल ही आओ।'

भीष्म ने माता सत्यवती को सब बातें बताईं। सत्यवती ने भीष्म के निश्चय का अनुमोदन किया। 'सत्य के कारण गुरु से युद्ध करोगे। मेरा आशीर्वाद है। तुम्हारी विजय होगी।'

दूसरे दिन कुरुक्षेत्र में गुरु-शिष्य का युद्ध छिड़ गया। शस्त्रास्त्र-कौशल में अप्रतिम परशुराम एक ओर थे। दूसरी ओर उन्हीं का प्रिय शिष्य गांगेय देवव्रत। प्राणहारक था वह युद्ध। तीन दिन तक युद्ध चलता रहा। कोई किसी से मचकता न था।

अन्त में परशुराम के पितामह ऋचिक आथर्वण और पिता जमदग्नि पितृलोक से वहाँ आये। उन्होंने कहा, 'पुत्र राम, अब बस करो। गांगेय को तुम न हरा सकोगे। तुम्हें अपयश से बचना चाहिए।' दूसरी ओर खुद गंगा ने आकर भीष्म को रोका। तब जाकर युद्ध बन्द हुआ। गुरु ने प्रसन्नतापूर्वक शिष्य के पराक्रम की प्रशंसा की। आशीर्वाद दिया। शिष्य को अपने से बढ़कर देख कौन गुरु प्रसन्न न हो?

अम्बा का अग्नि प्रवेश

गुरुजनों की मध्यस्थता से युद्ध रुक गया। सब प्रसन्न हुए। दुखियारी थी केवल एक अम्बा। म्लान मुख लिए एक कोने में खड़ी अम्बा से परशुराम ने कहा, 'बेटी, प्रयत्न तो मैंने किया, किन्तु लाचार ! अब मैं अधिक कुछ नहीं कर सकता। अच्छा होता अगर तुम भीष्म ही की शरण जातीं।'

परशुराम, फिर अपने आश्रम महेन्द्र पर्वत पर चले गये।

अम्बा सोच रही थी, 'विधि की वक्रता तो देखो ? जो रक्षक बनकर आया था वही शत्रु को आशीर्वाद दे लौट गया। अब कौन मुझ दुखियारी का दुःख मेटेगा ? और मैं क्या भीष्म की शरण जाऊँगी ? वह भीष्म, जो मेरे सारे दुःखों की जड़ है। न वह मुझे हर कर लाता और न मुझे यह दिन देखना पड़ता। मैं अबला उस भीष्म का भला क्या बिगाड़ सकूँगी ?

अन्त में अम्बा ने सोचा, 'मनुष्य की सहायता निरर्थक है। मैं देवों की सहायता लूँगी। मैं कठोर तपस्या करके इष्ट प्राप्ति करूँगी।'

स्वजनों और मुनियों के रोकने पर भी कठोर निश्चया अम्बा तपस्या करने को चली। क्रोध जब मन में घर कर लेता है तो बुरा-भला समझने का विवेक नष्ट हो जाता है। अविवेक ही विनाश का कारण है। अरण्य में अम्बा अनेक आश्रमों में रही। अनेक रमणीय तीर्थों में स्नान किया। अनेक महात्माओं के उपदेश सुने। पर उसका मन कहीं शान्त न हुआ।

अब वह तप करने लगी। एक पैर पर खड़ी रहकर, गले तक पानी में रहकर, निराहार रहकर तपस्या करती रही।

एकदिन स्वयं गंगाजी उसे समझाने आईं। कहा, 'बेटी, क्यों इतना कष्ट उठा रही हो ? छोड़ो यह बात।'

अम्बा ने कहा, 'माताजी, आपके पुत्र ने मुझे कहीं का न रखा। अब तो भगवान की कृपा से मैं उसे मारूँगी। तब कहीं मेरा मन शान्त होगा।' उसने गंगाजी की एक न सुनी।

आखिर उसकी कठोर तपस्या से शिवजी ने प्रसन्न होकर कहा, 'माँगो जो भी वर माँगोगी, मैं दूँगा।'

अम्बा ने कहा, 'भगवन् मुझे शक्ति दो कि मैं भीष्म को मार सकूँ।'

शिवजी ने कहा, 'तथास्तु, अगले जन्म में तुम कन्या जन्मोगी, फिर पुरुष बनोगी। तब भीष्म को मार सकोगी।'

अम्बा ने अग्नि-प्रवेश किया। दूसरे जन्म में वह द्रुपद की पुत्री हुई। यज्ञ से पुरुषत्व प्राप्त किया और महाभारत के युद्ध में अर्जुन की सहायता से भीष्म को मारा।

विचित्रवीर्य की मृत्यु

काशिराज कन्या अम्बा को शाल्व के पास भेजने के बाद भीष्म और सत्यवती ने अम्बिका और अम्बालिका को विचित्रवीर्य से ब्याह दिया। विचित्रवीर्य एक स्वरूपवान और बलिष्ठ युवक था। उसका साँवला रंग उसकी सौष्ठवपूर्ण देहयष्टि को बहुत जँचता था। विचित्रवीर्य को पाकर दोनों बहनें प्रसन्न हुईं।

भीष्म और सत्यवती ने संतोष की साँस ली। अब उनकी जिम्मेदारी पूरी हुई थी। अब वे ईश्वर-भजन करेंगे। किन्तु मनुष्य सोचता है क्या और भगवान करता है क्या!

विचित्रवीर्य राज्य का कारोबार देखने लगा। अब वह राजा था। कुरुदेश जैसा विशाल सुसम्पन्न राज्य था। धान्यपूर्ण भूमि थी। खजाना और कोष्ठागार सब खचाखच भरे हुए थे। किसी बात की कमी न थी। फिर क्या था? विचित्रवीर्य स्वभाव से कुछ विलासी तो था ही। फिर यौवन, अधिकार, धन-वैभव सब कुछ आ मिले। विवेकबुद्धि कुछ मन्द हुई। कमी तो किसी बात की थी नहीं। दो सुन्दर युवा पत्नियाँ थीं। राजा विलास में डूबा रहने लगा। आज इस वन में तो कल उस नदी के किनारे। फिर किसी पर्वत प्रदेश में विलास-यात्राओं के दौरे चल पड़े। राज-महल रंगमहल बन गया।

इस प्रकार सात वर्ष बीत गए। दोनों रानियों को अब तक कोई सन्तान नहीं हुई थी। अति विलास के कारण विचित्रवीर्य का शरीर क्षीण होने लगा। उसे राजयक्ष्मा का महारोग हो गया। कुशल वैद्यों ने अनेक उत्तम औषधियाँ दीं, पर विचित्र-वीर्य फिर स्वस्थ न हो सका। अन्त में उसका देहान्त हो गया।

कुरुकुल पर मानो बिजली गिर गई। कुरुवंश में अब गांगेय भीष्म को छोड़ कोई बचा नहीं था। आज तक तो भीष्म ने अपनी प्रतिज्ञा निभाई थी, किन्तु अब परिस्थिति कुछ और थी। सत्यवती का कहना था कि भीष्म को राजा बनना चाहिए और विचित्रवीर्य की रानियों को पुत्र देना चाहिए। नियोग तो धर्म था।

भीष्म ने कहा, 'माता, सूर्य भले ही पश्चिम में उगे, कुल का भले ही नाश हो जाय, मैं सत्य से कदापि विचलित न होऊँगा।' सुनकर माता सत्यवती रोने लगी। कहने लगी, 'तब फिर कुरुवंश का क्या होगा?'

भीष्म ने कहा, 'माता, उपाय तो है। अगर आज्ञा हो तो बताऊँ।'

सब लोग भीष्म की बात को उत्सुकता से सुनने लगे।

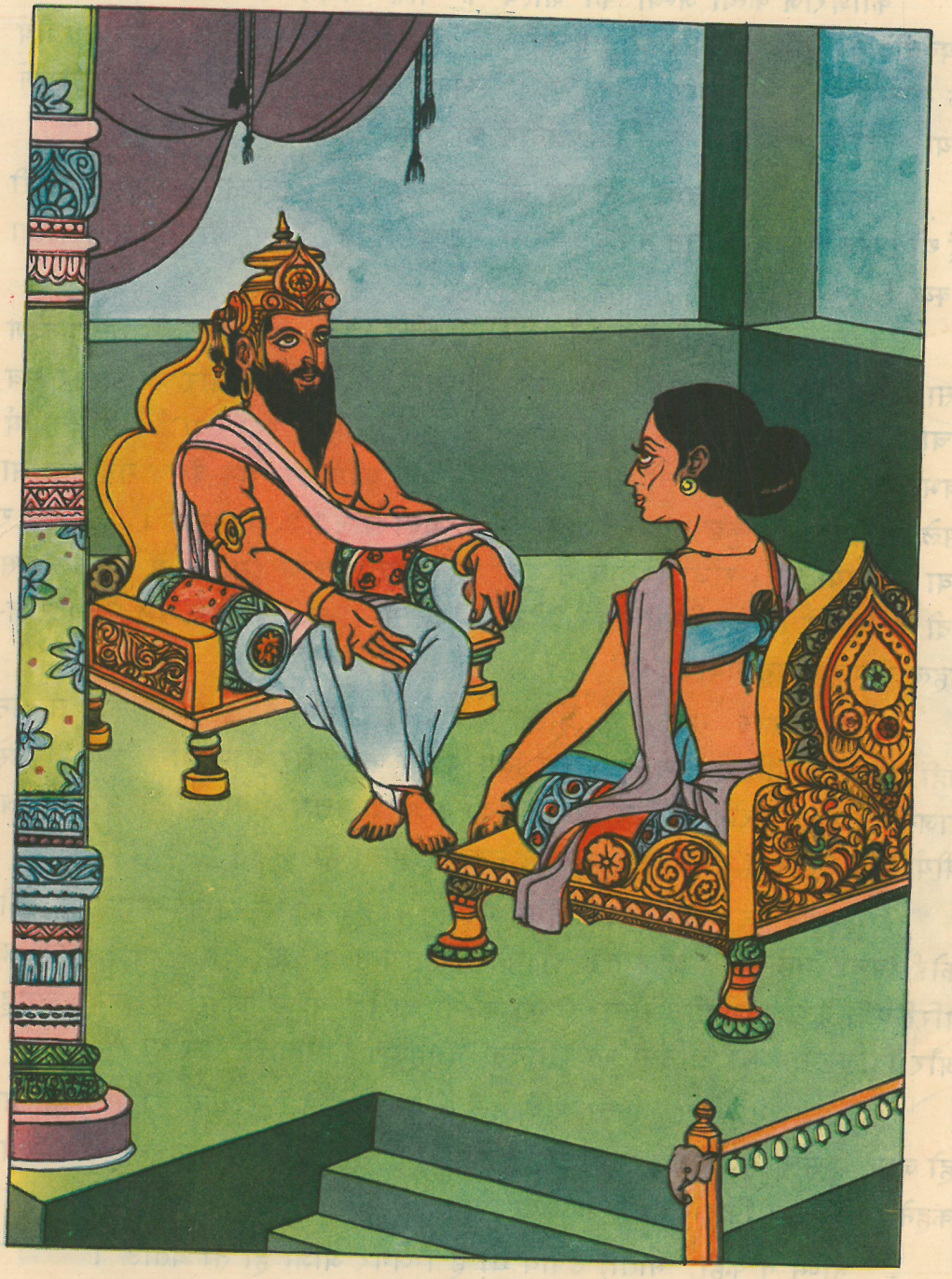

अब क्या होगा ?

भीष्म ने कहा, 'माता, नियोग की बात मुझे शोभा नहीं देती। मैं विचित्रवीर्य से बड़ा जो हूँ, राजवधुएँ तो मेरे लिए पुत्री समान हैं। क्या हम किसी योग्य पुरुष को यह कार्य नहीं सौंप सकते ?'

सत्यवती को यह बात जँच गई। किन्तु कौन था वह पुरुष जो कुरुवंश की बेलि को नवपल्लवित करने योग्य हो ! सब सोच में पड़े। सचिव, मन्त्री, बड़े अधिकारी सबकी राय ली गई। कुरुवृद्धों से पूछा गया। पर कोई कुछ बता न सका। सब कोई चिन्ता में थे, 'अब क्या होगा ?'

खूब सोचने के बाद सत्यवती को एक नाम याद आया। उसके मुख पर एक हल्की मधुर मुस्कान दौड़ गई। घोर अँधेरे में मानो दीप जल उठा।

कुछ संकोच के साथ उसने देवव्रत भीष्म से कहा, 'वत्स देवव्रत, कहते कुछ संकोच अवश्य होता है, किन्तु कहना ही पड़ेगा।'

भीष्म प्रसन्न हो बोले, 'कहो माँ, अवश्य कहो। आपका जीवन तो यमुना के समान पवित्र है। आप जो भी कहेंगी अच्छा होगा।'

सत्यवती ने अपना भूतकाल खोलना आरम्भ किया, 'यौवन की देहरी पर पग रख ही रही थी तब की बात है। यमुना पार करने वाले यात्रियों की सहायता करना हमारा काम था। मैं नौका में यात्रियों को पार ले जाती थी। एक समय मुनिवर पराशर मेरी नाव में आ बैठे। मुझे देखते ही वे बोले, तुम बड़ी भाग्यवती हो। तुम्हारा एक पुत्र महान् ज्ञानी होगा। कहकर उन्होंने मुझे स्पर्श किया। उनके छूते ही मेरे शरीर से मछली की गन्ध न जाने कहाँ चली गई। अब शरीर से अलौकिक सुगन्ध आने लगी। यमुना के एक द्वीप में मुझे पुत्र हुआ। वही कृष्ण द्वैपायन, पराशर का पुत्र। साँवला, ऊँचा, स्वप्निल आँखों वाला द्वैपायन आज भी वैसा ही मेरी दृष्टि के समक्ष है। तप करने को पिता के साथ जाते समय उसने कहा था, 'जब भी याद करोगी माँ, मैं तत्काल तुम्हारे पास आ जाऊँगा। तेरे पुत्र पराशर कृष्ण का यह वचन है। बाकी माँ, तप तो मैं करूँगा ही। ब्राह्मण जो हूँ।'

फिर जैसे सपने को समेटते हुए सत्यवती ने कहा, 'तो बुलाऊँ उसे ?'

भीष्म ने कहा, 'धन्य हो, माँ। द्वैपायन जैसा पवित्र पुरुष कुरुदेश में मिलेगा कहाँ। आप अवश्य उन्हें बुलाइये।'

और सत्यवती ने द्वैपायन का स्मरण किया।

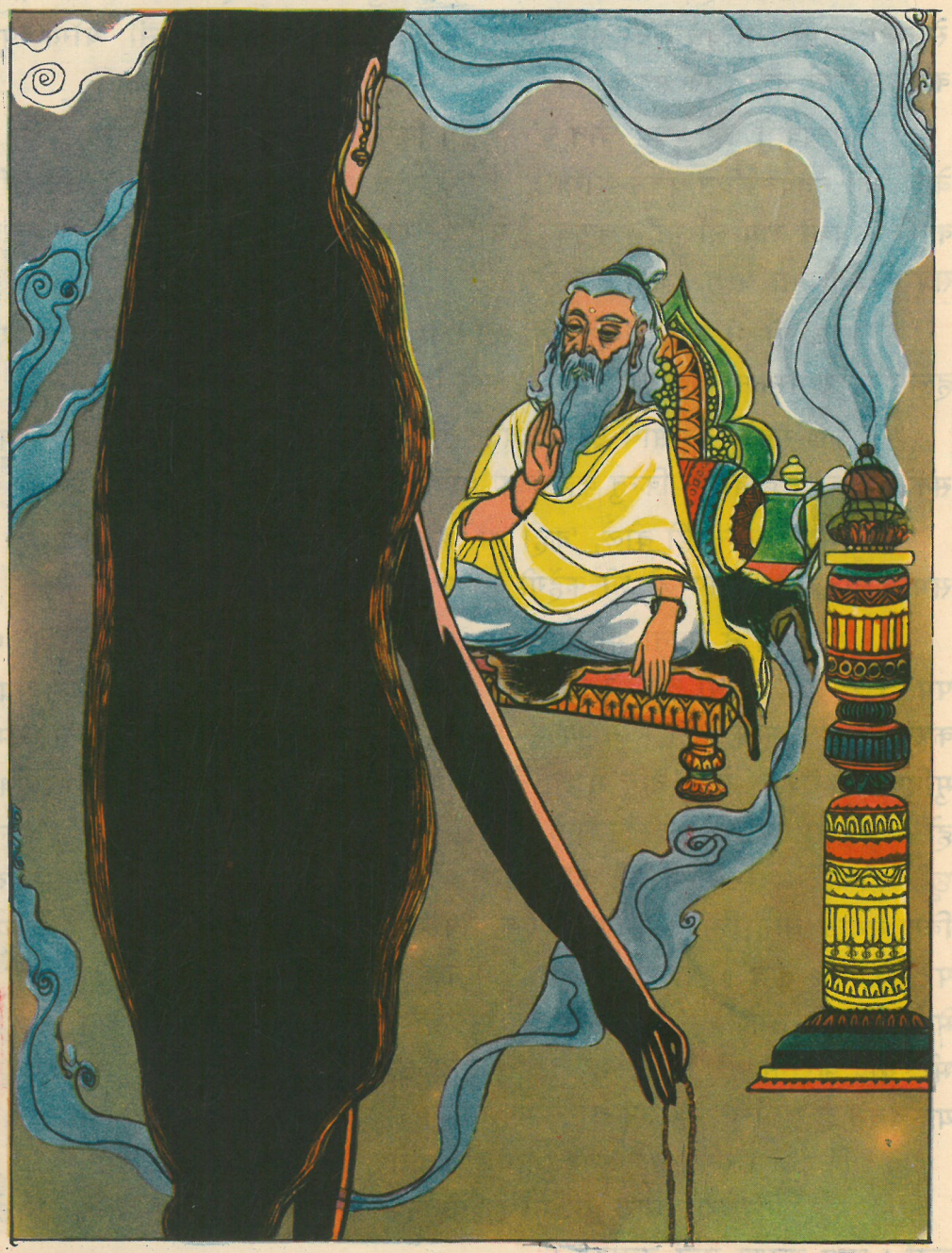

कुरुकुल की वंशबेलि

माता सत्यवती ने एकाग्र मन से कृष्ण द्वैपायन का ध्यान किया। उत्कट भाव का प्रतिघोष अवश्य होता है। उधर यमुना तीर पर अपने आश्रम में महामुनि कृष्ण द्वैपायन ध्यान मग्न बैठे थे कि अकस्मात् माता सत्यवती का दुःखपूर्ण मुख मुनि के मन पर छा गया। महर्षि समझ गये, माता सत्यवती अवश्य किसी संकट में है। मुझे जाना चाहिए। और वे तुरन्त चल दिए हस्तिनापुर को।

कुछ ही समय में वे हस्तिनापुर में माता के समक्ष खड़े थे। माता ने कई वर्षों के बाद पुत्र को देखा, हृदय भर आया, द्वैपायन को छाती से लगा लिया, आँखें बहने लगीं।

कृष्ण ने अंजलिभर पानी से माता का मुख धोकर उन्हें स्वस्थ किया। फिर कुशल प्रश्न के बाद कहा, 'कहो माता, क्यों स्मरण किया मुझे ? मुझे क्या करना है ?'

गद्गद कण्ठ से माता बोली, 'कितने वर्ष बीत गये ! आठ साल के तुम पिता की अँगुली पकड़े तपस्या को गये। आज तुम्हें देख रही हूँ। मैं अभागिन महर्षि के देहान्त के समय भी तुम्हारे पास न आ सकी। लाख चाहा राजमहल का जाल न तोड़ सकी। आज अपनी भीड़ में तुम्हारी याद आई।'

द्वैपायन बोले, 'सवेरे ध्यान योग में था तब तुम्हारा दुःखपूर्ण मुख मेरे चित्त पर छा गया। क्षण की भी वेला न खोकर मैं दौड़ पड़ा। कहो ऐसी क्या भीड़ पड़ी ?'

सत्यवती ने चित्रांगद की वीर मृत्यु और विचित्रवीर्य की निःसंतान मृत्यु का समाचार सुनाकर कहा, 'अब कुरुवंश की वेलि का प्रश्न है। तुम तो जानते ही हो गांगेय अपनी प्रतिज्ञा न छोड़ेगा। उसे विवश करना उचित भी नहीं। अब तो सब तुम पर निर्भर है।'

मुनि द्वैपायन ने कहा, 'माता तुम्हारी बहुओं को एक वर्ष तपस्या करके पवित्र बनना पड़ेगा।' किन्तु इतनी अवधि तक राह देखना शक्य न था। तब द्वैपायन ने कहा, 'तेरी राजवधुओं को तपस्वी का तेज सहना पड़ेगा।' बड़ी रानी अम्बिका मुनि के तपःक्षीण शरीर को सह न सकी। उसे अन्धा पुत्र हुआ। वह था धृतराष्ट्र। किन्तु अन्धा कुरुदेश का राजा कैसे हो सकता था ? द्वैपायन ने दूसरी रानी अम्बालिका को पुत्र दिया। रानी ने मुनि के शरीर गन्ध का उपाय अपने शरीर पर चन्दन लगाकर किया इसलिये उसका पुत्र पाण्डु वर्ण का हुआ। वह था पाण्डु।

कुरुवंश की वंशवल्लरी फिर से नवपल्लवित हो उठी।

विदुर

बड़ी रानी अम्बिका के घिनौने स्वभाव के फलस्वरूप उसे अन्धा पुत्र पैदा हुआ। तब माता सत्यवती ने द्वैपायन से कहा, 'कुरुकुल का वंशकर अन्धा हो यह तो ठीक नहीं। अम्बिका को एक दूसरा पुत्र होना चाहिए।'

घिनौने स्वभाव की अम्बिका को सत्यवती ने समझाया। फिर भी वह स्वयं द्वैपायन के पास न गई। अपनी एक रूपवती दासी को अपने स्थान पर द्वैपायन के पास भेजा। दासी की नम्रता देख द्वैपायन ने प्रसन्न होकर उसे आशीर्वाद दिया, 'तुम्हारा पुत्र धर्मराज का अवतार होगा। दास्य से तुम्हारी मुक्ति होगी।'

और सचमुच उस दासी का पुत्र धीर, शान्त और ज्ञानी मानों धर्मराज का अवतार था। उसका नाम था विदुर।

जनमेजय ने पूछा, 'क्या विदुर धर्मराज के अवतार थे ?'

वैशम्पायन ने कहा, 'हाँ, माण्डव्य ऋषि के शाप के कारण धर्मराज ने शूद्रा माता के उदर से जन्म लिया। वही थे विदुर। माण्डव्य बड़े ज्ञानी और तपस्वी थे। एक दिन वे अपने अरण्य स्थित आश्रम में एक वृक्ष की छाया में खड़े मौन साधना कर रहे थे। इतने में कुछ चोर भागते हुए वहाँ आये। राजपुरुष चोरों का पीछा कर रहे थे। भयभीत चोरों ने चोरी का माल माण्डव्य के सामने फेंक दिया और स्वयं आश्रम के अन्दर छिप गये। राजपुरुषों ने माण्डव्य से चोरों की पृच्छा की, किन्तु मौन माण्डव्य ने कोई उत्तर न दिया। आश्रम में से चोरों को पकड़ने पर राजपुरुष माण्डव्य को भी चोर समझकर पकड़ ले गये। राजा ने भी बिना कुछ सोचे सबको शूली चढ़ाने का दण्ड दिया। माण्डव्य को भी शूली पर चढ़ा दिया गया। यह जानकर कुछ मुनियों ने राजा को वस्तुस्थिति कहकर समझाया। माण्डव्य से क्षमा-प्रार्थना करके राजा ने उन्हें शूली पर से उतारा। मुनि का देहान्त हो गया।

मरण के उपरान्त धर्मराज के पास जाकर माण्डव्य ने पूछा, 'किस अपराध की यह सजा मुझे मिली ?' धर्मराज ने कहा, 'बाल्यावस्था में तुम तितलियों को काँटे चुभोते थे। उसीका यह दण्ड तुम्हें मिला है।' माण्डव्य ने कहा, 'अबोध बालक के अपराध दण्ड देने योग्य नहीं होते। फिर भी तुमने मुझे यह दण्ड दिया। तुम शूद्र स्वभाव के हो, इसलिए शूद्रा माता के गर्भ से मनुष्य जन्म ग्रहण करो।'

माण्डव्य के इस शाप के कारण धर्मराज विदुर बनकर जन्मे। विदुर का ज्ञान और विवेक कुरुकुल के लिये हितावह सिद्ध हुआ।

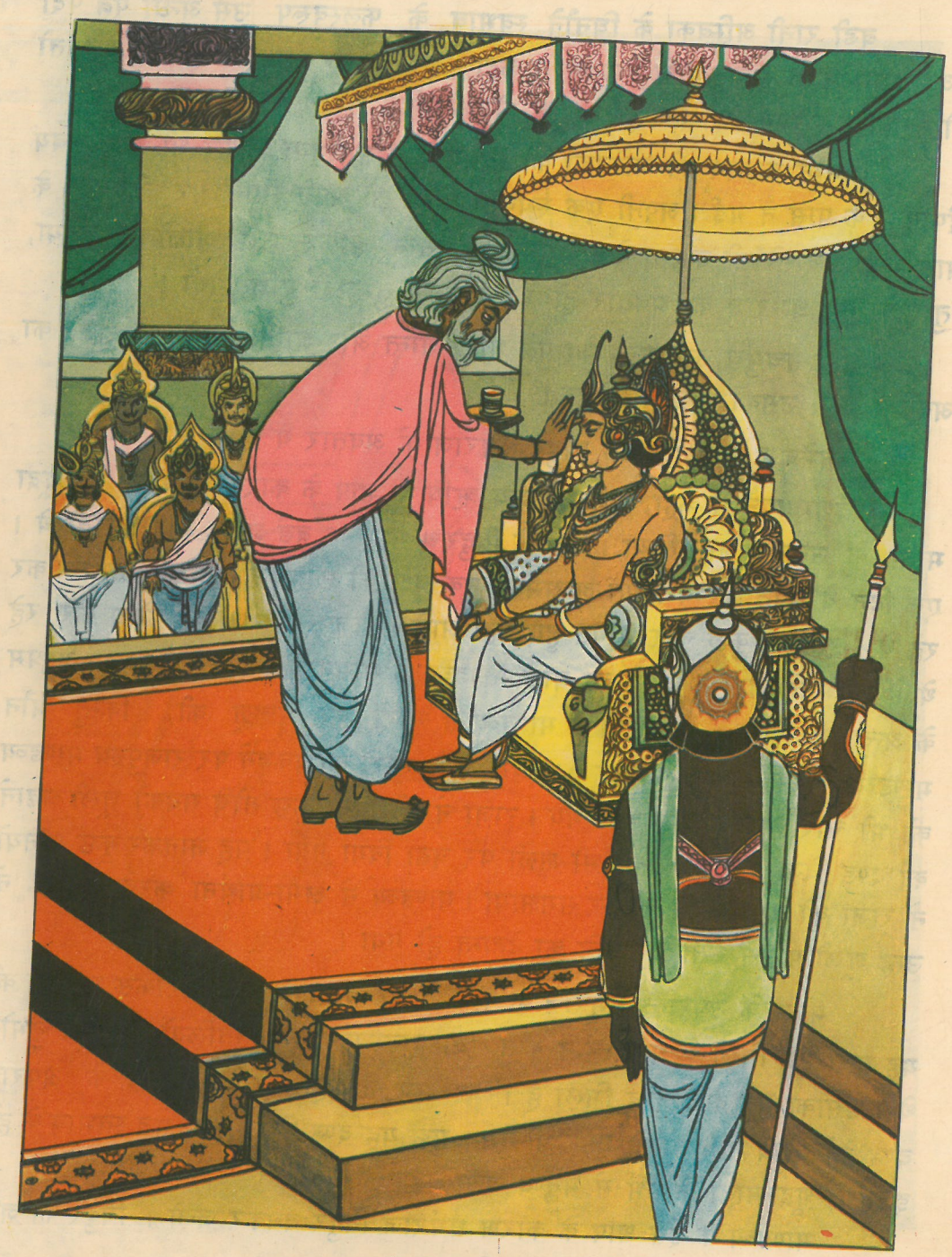

राजा पाण्डु

महर्षि द्वैपायन की कृपा से कुरुकुल का संकट टला। दो रानियों के दो पुत्र एवं दासी के एक पुत्र हुआ। कुरुदेश की प्रजा को राजा मिला। प्रजा को बड़ा आनन्द हुआ।

बड़ी सावधानी के साथ भीष्म कुमारों को संस्कार शिक्षा देने लगे। कुशलता से राजकाज चलाना, प्रजा का सुख-दुःख समझना, धर्म-अधर्म, मित्रता-शत्रुता का भेद परखना आदि बातें वे कुमारों को सिखाते थे।

धृतराष्ट्र हृष्ट-पुष्ट और खूब बलवान था। स्वभाव से कुछ ढोंगी और ईर्ष्यालु था। पाण्डु का शरीर कुछ फीका था, किन्तु वह बलवान था। धनुर्विद्या में कुशल था। उदार और दीर्घ दृष्टि वाला था। विदुर सयाना और विद्वान था।

धृतराष्ट्र सब में ज्येष्ठ था, किन्तु वह जन्म से ही अन्धा था। राजकुल की प्रणाली के अनुसार उसे राजा नहीं बनाया जा सकता था। मँझला पाण्डु राजा बनने योग्य था। कुरुवृद्धों की राय लेकर भीष्म ने पाण्डु का राज्याभिषेक किया। कुरुदेश में आनन्दोत्सव हुआ। राजा शन्तनु की वंशबेलि पुनः पल्लवित हुई।

युवा पाण्डु पर भीष्म की निगरानी थी। सयाना विदुर सचिव था। विनीत पाण्डु धृतराष्ट्र का सम्मान करता था। कुटुम्ब में स्नेहभाव था।

माता सत्यवती की राय लेकर भीष्म ने धृतराष्ट्र का विवाह गान्धारराज सुबल की पुत्री गान्धारी से किया। आँखों पर पट्टी बाँध गान्धारी ने पति के साथ स्वयं अन्धापन स्वीकार किया।

कुन्तिभोज नरेश की पुत्री पृथा ने, जो वास्तव में यादव शूरसेन की पुत्री और वसुदेव की बहन थी, स्वयंवर में पाण्डु को वरा। यादव कौरवों के सम्बन्ध से सब प्रसन्न हुए। फिर कुरुवंश का पक्ष दृढ़ करने हेतु भीष्म ने पाण्डु का दूसरा विवाह मद्रराज शल्य की भगिनी माद्री से किया। विवाह के उपरान्त पाण्डु दोनों वधुओं के साथ आनन्द-विहार करता रहा।

अब भीष्म आदि की अनुमति लेकर पाण्डु ने दिग्विजय के लिए प्रस्थान किया। अनेक राजाओं को मित्र बनाया। दुष्टों को शासित किया। दिग्विजय में खूब धन प्राप्त करके पाण्डु हस्तिनापुर लौटा। दिग्विजयी पाण्डु का भव्य स्वागत हुआ। शन्तनु का प्रताप फिर बढ़ने लगा। कुरुदेश के सुख का सूर्य मध्याकाश में था। वीर हितैषी वंश का राजा मिलने पर सब कुरुराष्ट्र की प्रजा के भाग्य को सराहते थे।

मृगया

दिग्विजय के उपरान्त कुरुराज्य का प्रभाव बढ़ गया, राज्यकोष परिपूर्ण था। पाण्डु ने इस वैभव का विनियोग धर्म में करना चाहा। उसने भीष्म आदि के सामने यह प्रस्ताव रखा। भीष्म ने कहा, पुत्र तुम्हारी कल्याणी मति को देख हमें बड़ा आनन्द होता है। तुम अवश्य यज्ञ करो और कुरुवंश की कीर्ति को अधिक उज्ज्वल करो।

पाण्डु ने विनयपूर्वक कहा, 'ज्येष्ठ भ्राता धृतराष्ट्र को इस यज्ञ का यजमान बनने की अनुमति भी दीजिये।' यह सुनकर कुरुवृद्धों को और भी अधिक संतोष हुआ।

फिर तो धृतराष्ट्र कई बड़े-बड़े यज्ञों का यजमान बना। यज्ञों के उपरान्त अनेक विद्वान ब्राह्मण, सूत, मागध, कवि, गायक, नर्तक आदि को यथेच्छ दान देकर उनका सत्कार किया गया। यही तो राजा का सच्चा संस्कार धन होता है। इन्हीं के कारण प्रजा के संस्कार जागृत रहते हैं। इन सबका पालन-पोषण राजा का धर्म है। अच्छा राजा अपनी प्रजा को इसी प्रकार सुसंस्कृत रखता है। महान राजाओं में अब पाण्डु की भी गणना होने लगी।

एक समय मृगया के बहाने प्रजा के सुख-दुःख देखने के हेतु राजा पाण्डु वनों में विचरने लगे। रास्ते में जनपदों को देखते, हिंस्र पशुओं का वध करते वे आगे बढ़े। एक वन में हृष्ट-पुष्ट मृगों का यूथ चर रहा था। यूथपति मृग एक सुन्दर मृगी के साथ था। राजा ने तीन बाणों से मृग को और दो बाणों से मृगी को बींध डाला। मृगी तत्काल मर गई।

मरता हुआ मृग मनुष्य वाणी में बोला, 'यह क्या किया राजन्, धार्मिक होकर तुमने स्नेह व्यवहार करते निर्दोष मृग युगल को क्यों मारा ? इस अपराध का दण्ड तुम्हें भुगतना पड़ेगा। पाण्डु ने कहा, 'शत्रु और मृग किसी भी स्थिति में वध्य हैं। ऐसा शास्त्रवचन है।'

मृग ने कहा, 'ठीक तो है, तथापि स्नेहासक्त प्राणी का वध करना पाप है। इस विषय में मनुष्य और मृग में कोई अन्तर नहीं है। राजा को यह बात ध्यान में रखनी चाहिए। और फिर वस्तुतः मैं किन्दम नामक मुनि हूँ। दिन में कामाचार के कारण लज्जावश मैं मृग रूप में था। कामासक्त दशा में मेरा वध हुआ, अतः तुम भी कामासक्त दशा में मृत्यु प्राप्त करोगे।'

किन्दम मुनि का यह शाप सुनकर पाण्डु सन्न रह गये। अपने अविवेक का पश्चाताप करने लगे। अविचारिता का यही परिणाम होता है।

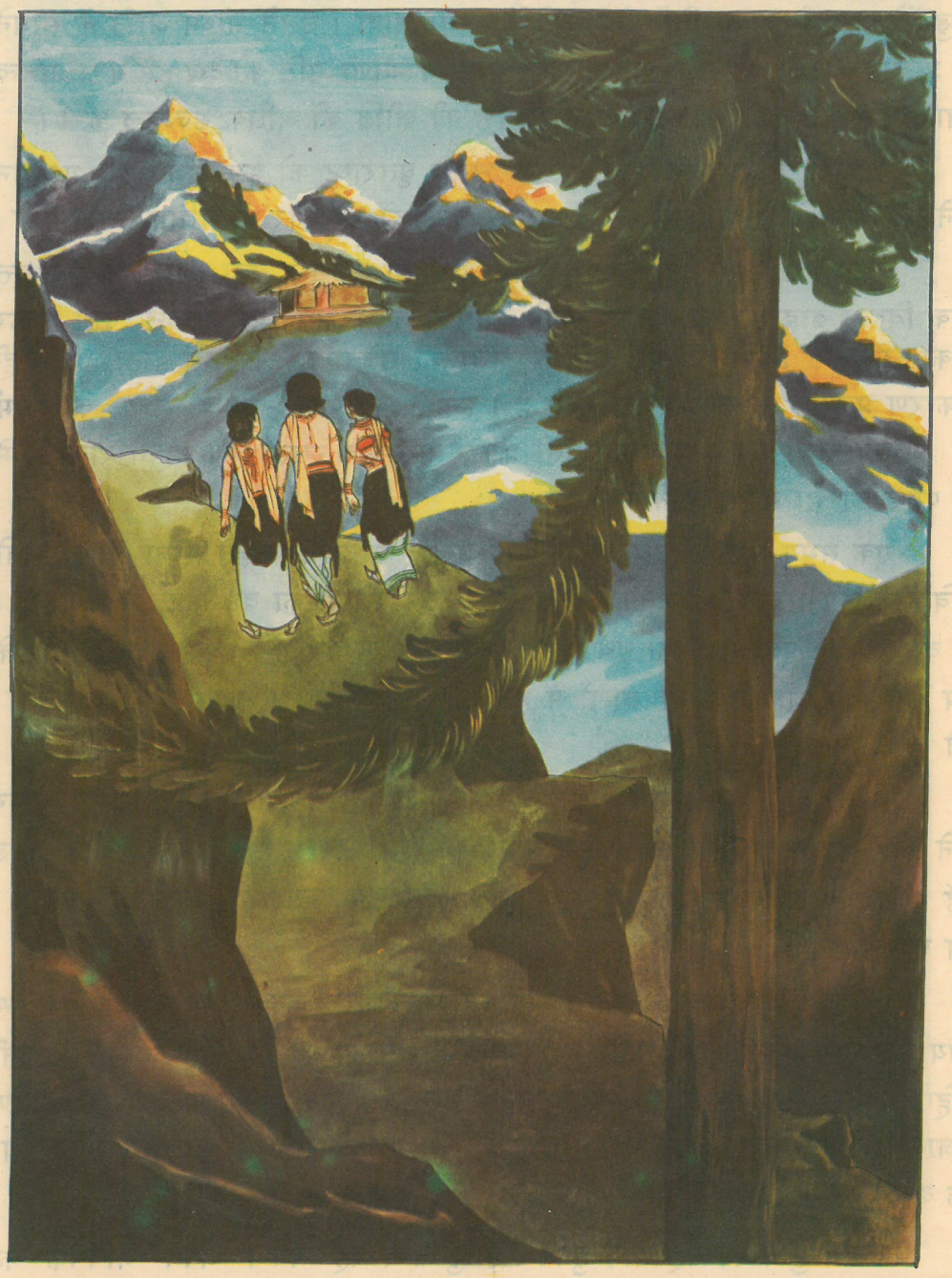

वनवास

मृग का अभिशाप सुनकर पाण्डु को बड़ा आघात लगा। मन में विचार आया, 'निर्दोष भाव से यह सब क्या हो गया ? विवेक से भ्रष्ट होने वाले का विनिपात ही होता है। अब हस्तिनापुर जाने से क्या लाभ ? इससे तो अच्छा है कि जंगल में जाकर पाप का प्रायश्चित करूँ। अब तप ही मेरे लिए सर्वस्व है। राज्यवैभव और पत्नियों को त्यागकर मैं अकेला ही वन में घूमता रहूँगा।'

पाण्डु ने पत्नियों से कहा, 'तुम अब हस्तिनापुर जाकर गुरुजनों की सेवा-सुश्रुसा करो। कहना कि मैं अब वन में ही रहूँगा।'

कुन्ती और माद्री ने कहा, 'जहाँ तुम वहाँ हम। हम भी आपकी वानप्रस्थ की सहयोगिनी बनेंगी और व्रत एवं नियम से शेष जीवन जीयेंगी।'

पाण्डु ने कहा, 'जैसी तुम्हारी इच्छा।' तदनन्तर अन्य सेवक-जनों को हस्तिनापुर भेज दिया। सेवकों ने जाकर सारी कहानी सुनाई। कुरुकुल पर मानो बिजली कौंध गई। भीष्म और सत्यवती धीर एवं गम्भीर थे। उन्होंने राजमाताओं और धृतराष्ट्र को सान्त्वना दी।

पाण्डु, कुन्ती एवं माद्री तापस वेश में कुरुदेश से हिमालय की ओर चल दिये। हिमालय में शतश्रृंग पर्वत पर पहुँचकर वहाँ ठहरने का निश्चय किया। शतश्रृंग की वनश्री बड़ी भव्य थी। जगह-जगह पर सुन्दर झरने बहते थे। फल-फूल से वह प्रदेश भरा था। कुछ ही समय में पाण्डु मुनिवरों में प्रिय हो गये। इनको कोई भाई-समान मानने लगा, तो कोई मित्र-समान। वृद्ध मुनिवर इनको पुत्र-समान मानने लगे। कुन्ती एवं माद्री भी ऋषियों में प्रियपात्र हो गईं। राजा अभिशाप का दुःख भूल गये। शान्तचित्त से वानप्रस्थ व्रत का परिपालन करने लगे। वे इसी तरह भूल का प्रायश्चित करने लगे।

एक दिन शतश्रृंग के तापसजनों को पाण्डु ने उत्तर की ओर जाते देखा। वे पितरों के दर्शन को जा रहे थे। पाण्डु ने कहा, 'मुनिवरो हमें भी अपने साथ ले चलो।'

मुनियों ने कहा—आपकी यह कोमल देह वाली वधुएँ इस रास्ते पर नहीं चल सकेंगी। बीच में बड़े-बड़े पर्वत एवं नदियाँ आती हैं, जिन्हें पार करना आसान काम नहीं है। सच तो यह था कि निःसंतान मनुष्य पितृलोक में नहीं जा सकता था। पाण्डु को दुःख लगेगा ऐसा मानकर ऋषिजनों ने कठोर रास्ते की ही बात कही। किन्तु पाण्डु को इसका आभास हो गया। वह निःसंतान हैं यह बात तीव्रता से उन्हें अखरने लगी। पाण्डु के शान्त जीवन में फिर से हलचल मच गई।

कुन्ती और माद्री

कुन्ती और माद्री ने आज राजा को चिन्ताग्रस्त देखा ।

कुन्ती ने माद्री से कहा, स्वामी को आज क्या हो गया है ? हमसे कुछ भूल तो नहीं हुई ?' माद्री ने कहा, 'हमारी तो कोई भूल नहीं, लेकिन वे आज सब ऋषियों से मिलने के बाद चिन्ता में पड़ गए हैं ।'

थोड़ी ही देर में पाण्डु वहाँ आए । उनकी बातचीत से चिन्ता का कारण ज्ञात हो गया । 'आज शतश्रृंग के ऋषि पितृ-दर्शन के लिए जा रहे हैं । हम नहीं जा सकते, क्योंकि हम निःसंतान हैं ।

कुन्ती ने कहा, 'यदि आपके भाग्य में बालक होता तो आपको अभिशाप क्यों मिलता ? संतान की चिन्ता भगवान के हाथों में सौंपना ही एक सच्चा उपाय है ।' पाण्डु ने कहा, 'अभिशाप तो मुझे लगा है ? तुम दोनों को क्या । तुम पुत्र प्राप्ति करो ।' कुन्ती ने कहा, 'लेकिन इस हालत में हो भी क्या सकता है ?'

पाण्डु ने कहा, अपनी निःसंतान अवस्था के कारण मैं मुनिजनों के साथ न जा सका । मैंने प्रायोपवेशन मरणासन्न उपवास का व्रत करने का निश्चय किया । तब मुनिजनों ने कहा, 'हे राजन् आपके यहाँ बड़े भाग्यशाली पुत्ररत्न होंगे । यह हम सब जानते हैं । आपको प्रायोपवेशन करने की कोई जरूरत नहीं है ।' मैंने कहा, 'मुझे किन्दम मुनिराज का अभिशाप जो लगा है ।' मुनिजनों ने कहा, 'तुम नियोग द्वारा पुत्र प्राप्त कर सकते हो, जो आपके लिए श्रेष्ठ उपाय है ।'

पाण्डु ने कुन्ती से कहा, 'मुनिजनों का कहना सच ही है । तुम नियोग द्वारा पुत्र प्राप्त करो ।' कुन्ती ने कहा, 'नियोग की बात मुझे जँचती नहीं है । इस रस्म की प्रतिष्ठा अब नहीं रही । तुम हमें पुत्र क्यों नहीं देते । आपके ही कुल के व्युसिताश्व राजा ने मृत्यु के बाद अपनी रानी भद्रा को पुत्र दिया था ।'पाण्डु ने कहा, 'मेरे लिए यह भी शक्य नहीं है । अब तो बिना नियोग के कोई रास्ता ही नहीं है ।'

कुन्ती ने कहा, 'ठीक है । आपकी इच्छा ऐसी ही है तो मेरे पास एक उपाय है । आपकी इच्छा हो तो मैं उसका प्रयोग करूँ ।'

पाण्डु ने कहा, 'तेरे पास ऐसा क्या है ?'

कुन्ती ने कहा, 'महर्षि दुर्वासाने प्रसन्न होकर पाँच देवों के मंत्र मुझे दिये हैं । इस मन्त्र शक्ति के प्रभाव से देव मुझे पुत्र देंगे । आप कहते हैं तो मैं मंत्र का प्रयोग करूँगी ।'

दुर्वासा की आशिष

पाण्डु ने कहा, 'वाह रानी तुम भी खूब निकलीं । अब तक बात भी न बताई ।'

कुन्ती ने कहा, 'मैं जब पिता कुन्तिभोज के यहाँ थी तब की बात है । एक दिन मुनि दुर्वासा हमारे यहाँ आये । उनकी सेवा-शुश्रूषा का कार्य मेरे जिम्मे था । दुर्वासा मुनि सत्य के बड़े आग्रही थे, इसी कारण साधारण लोग इन्हें क्रोधी समझते थे । स्वभाव से वे दयालु थे । इनकी सेवा करना तेग की धार पर चलना था । सच्चे एवं अच्छे आचरण के लिए ध्यान रखना ही पड़ता है । सत्य का आचरण करना कदापि अशक्य नहीं है । ऐसी बात मुनि की सेवा-शुश्रूषा से मुझे सीखने को मिली । हम जितने संयमी एवं सरल हों उतने ही ज्यादा सत्य के निकट रह सकते हैं ।

सुबह प्रभात से भी पहले उठना पड़ता । मुनि की स्नानादिक् सामग्री तैयार रखनी पड़ती । मुनि कभी-कभी 'आता हूँ' कहकर जाते और रात को भी खोजे नहीं मिलते । जब भी आते उसी वक्त उनका भोजन तैयार रखना पड़ता ।

कुछ समय के बाद मुनि यात्रा के लिए निकल पड़े । सबको यथायोग्य आशिष दी । मुझे बुलाकर कहा—'बेटी तुमने मेरी अच्छी सेवा की है । बता तुझे क्या दूँ ?'

मैंने कहा, 'भगवन् आप प्रसन्नचित्त रहे, यही मेरे लिए सब कुछ है ।'

बाद में मुनि ने कुछ सोच-विचार करके मुझसे कहा—'बेटी, तू सुखी होगी । तुझे आपत्ति से निकलने के लिए उत्तम पुत्ररत्न पैदा करने के मन्त्र देता हूँ ।'

मैं स्नान करके पवित्र हुई । मुनिवर ने मुझे सूर्य, यमधर्म, वायु, इन्द्र एवं अश्विनी कुमारों के मन्त्र ग्रहण करवाये । उन्हीं मन्त्रों के द्वारा देव अपना अंश पुत्र के रूप में देंगे ।'

कुन्ती की बात सुनकर पाण्डु के आश्चर्य का ठिकाना न रहा । निराशा के अन्धकार में आशा की किरण फूट पड़ी । पाण्डु ने कहा, 'तू पुत्रवती बने और माद्री निःसंतान रहे यह भी ठीक नहीं । माद्री को भी अपने साथ तप के लिए ले जा ।'

कुन्ती ने इस बात को स्वीकार करके यमधर्म, वायु, और इन्द्रदेव की अर्चना की । यमधर्म के दिए हुए पुत्र का नाम युधिष्ठर था, वायु के दिए हुए पुत्र का नाम भीम था और इन्द्र के दिए हुए पुत्र का नाम अर्जुन था ।

कुन्ती ने माद्री को अश्विनी कुमारों का मन्त्र दिया । अश्विनी कुमारों ने माद्री को दो जुड़वाँ पुत्र दिये । बड़ा नकुल और छोटा सहदेव ।

कुन्ती को महापुरुष की सेवा का ऐसा उत्तम फल मिला ।

कर्ण

जनमेजय ने कहा, 'दुर्वासा मुनि ने सूर्य का मन्त्र भी तो कुन्ती को दिया था, उसका प्रयोग उसने क्यों नहीं किया ?'

वैशम्पायन ने कहा—'कुन्ती जब कुमारिका थी तभी उसने सूर्य-मंत्र का प्रयोग किया था। इससे एक पुत्र रत्न भी पैदा हुआ था। यह बात कुछ ही लोग जानते हैं।'

जनमेजय ने कहा, 'उस पुत्र का क्या हुआ ?'

वैशम्पायन ने कहा, मुनि दुर्वासा ने कुन्ती को पाँच देवताओं के मन्त्र दिये थे। तब कुन्ती कुमारिका थी। मुनि के दिये मन्त्र की परीक्षा करने का उसे विचार आया। मुनि के कथनानुसार स्नानादि विधि से पवित्र होकर उसने सूर्य के मन्त्र की आराधना की। कुछ ही समय में सूर्यदेव कुन्ती के पास आ गये।

सूर्य ने कहा, 'कुमारी तूने मुझे क्यों बुलाया ? क्या काम है ?'

कुन्ती ने कहा, 'भगवन् मुझे कुछ भी काम नहीं है। मैं मन्त्र की आराधना करके देखना चाहती थी कि क्या मन्त्रशक्ति से भगवान स्वयं उपस्थित होते हैं।'

सूर्य ने कहा, 'सुन्दरी ! मन्त्र की क्या कभी परीक्षा हो सकती है ? मुनि ने पुत्र-प्राप्ति के लिए तुझे वर दिया था। मैं तुझे पुत्र दूँगा।'

कुन्ती ने कहा, 'भगवन् मुझ कुमारिका को यदि पुत्र पैदा हो तो मेरे सतीत्व का क्या होगा ? मेरे कुटुम्ब की इज्जत का क्या होगा ?'

सूर्य ने कहा, 'कुमारी तेरा कुमारिकापन मेरे आशीर्वाद से खण्डित नहीं होगा। तुझे जो पुत्र होगा, उसकी देह पर कवच एवं कान पर अमृत से बने हुए कुंडल होंगे। मैं प्रतिदिन उसकी रक्षा करूँगा। तू मत घबरा।'

बाद में सूर्यदेव ने कुन्ती को स्पर्श किया। कुमारिका कुन्ती के देव जैसा सूर्य पुत्र पैदा हुआ। यह पुत्र थे स्वयं अंगराज कर्ण। अंगराज कर्ण या युधिष्ठिर आदि एक दूसरे को पहचानते नहीं थे। यही कारण था कि कर्ण और अर्जुन प्रतिस्पर्धी धनुर्धारी बन बैठे और अर्जुन के हाथों कर्ण मारा गया।

जनमेजय ने कहा, 'कुन्ती ने यह बात पहले से ही किसी को क्यों न बताई ?'

वैशम्पायन ने कहा, 'लड़ाई में मरे हुए वीरों को निवापांजलि देते वक्त कुन्ती ने इस रहस्य का घटस्फोट किया। यह जानकर पांडवों को बड़ा भारी आघात लगा।

एक ही भूल में से अनर्थों की परम्परा पैदा होती है।

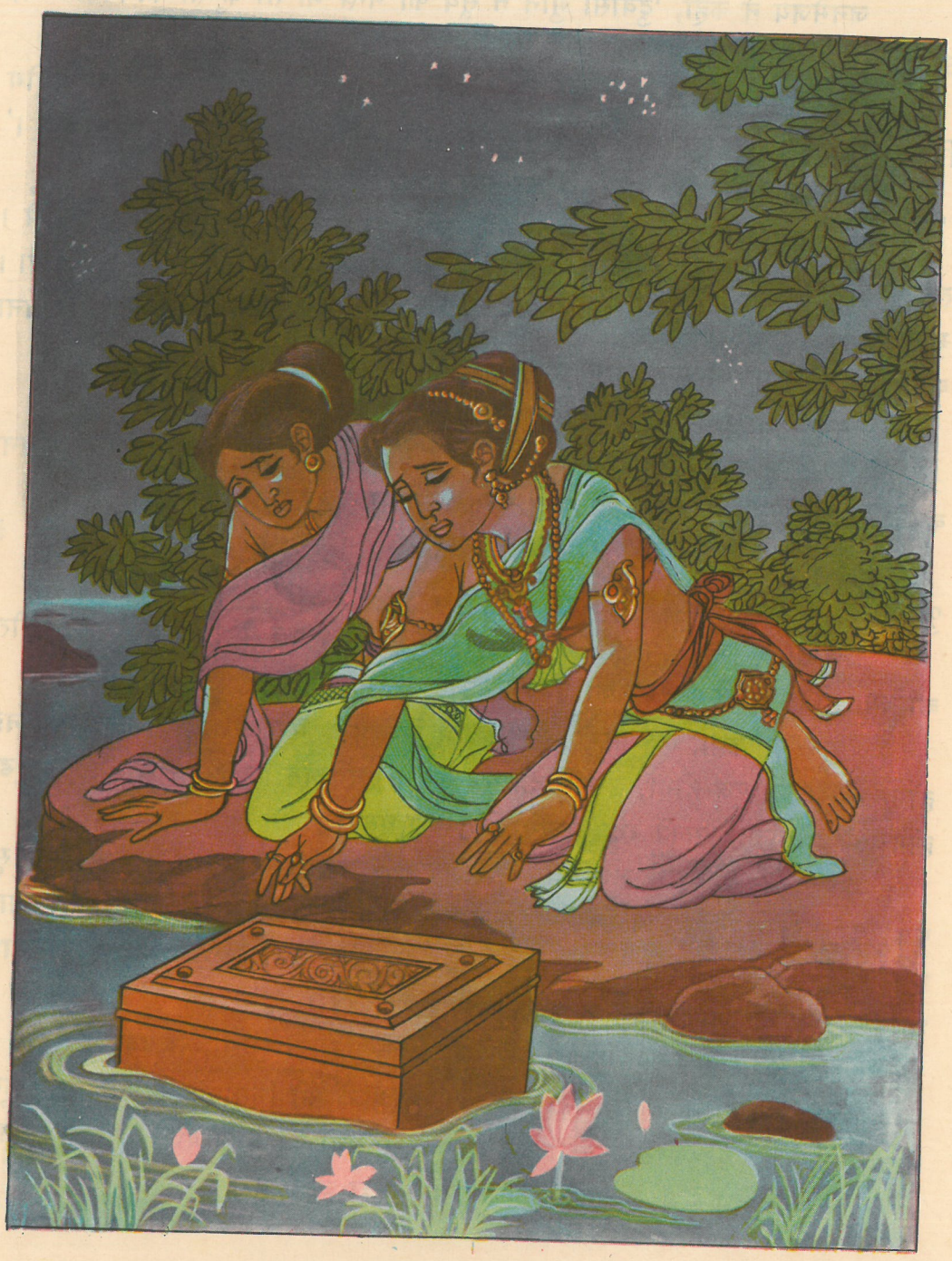

गंगा की शरण में

कुन्ती ने सूर्य के साथ हुए मिलन की बात किसी को जानने न दी। अकेली धायमाता को ही सब वृत्तान्त कहा। धायमाता पृथा को हमेशा एकान्त में रखती और सब तरह की सेवा करती। उसने किसी को शंका तक न होने दी।

समय जाते पृथा को पुत्र पैदा हुआ। पृथा की चिन्ता अब बढ़ गई। इस पुत्र का क्या किया जाय? कहाँ रखा जाय? माता-पिता, भाई आदि स्वजन देख लें या ज्ञात हो जाय तो क्या होगा? ये सब मुझे कैसी मानेंगे? सब लोग क्या कहेंगे?

धायमाता पृथा को सान्त्वना देती, 'मैं सब उपाय ढूँढ़ लूँगी। तू मत घबरा।'

कुन्ती ने कहा, 'मुझे अपने कुल की इज्जत की चिन्ता है न खुद की। लोग भला-बुरा देखे बिना जो नजर में आया वही मानकर आलोचना करने लग जाते हैं।'

पृथा की धायमाता धीर, गम्भीर एवं चतुर थी। उसे ज्ञात था कि पृथा-पुत्र को राजमहल में ज्यादा वक्त नहीं रखा जा सकता। उसने लकड़ी की कठिन सन्दूक बनवाई। हवा के आने-जाने की व्यवस्था रखी गई। फिर बालक को अन्दर रखा। उसे सुन्दर वस्त्र पहनाये गये। सुन्दर वस्त्र एवं अलंकार भी पास में रखे। मध्यरात्रि के समय धायमाता और पृथा सन्दूक लेकर अश्वनदी के तट पर गईं। सन्दूक को नदी के प्रवाह में तैरा दिया। सन्दूक नदी के प्रवाह में जब दूर चली गई तब वे राजमहल की ओर गुप-चुप चल पड़ीं। अपने जाये को कौन माता आसानी से त्याग सकती है? कुन्ती ने मन-ही-मन सूर्य से प्रार्थना की। मैं अभागिन अपने पुत्र को रख नहीं सकती हूँ। तुम उसे अच्छे ठिकाने रखना। उसको सुखपूर्वक रखना और मुझे समाचार देना।

सूर्योदय हुआ। कुन्ती ने सूर्यदेव को नमस्कार किया। मानो सूर्य हँसते-हँसते कह रहा था, पृथा चिन्ता मत कर। तेरा पुत्र अच्छे ठिकाने जाएगा। सुख पूर्वक रहेगा और अपने शौर्य से प्रख्यात होगा। महान दानवीर होगा और देव भी उसके पास से दान लेंगे। कुन्ती को कुछ शान्ति मिली।

कुन्ती द्वारा अश्वनदी में तैराई हुई सन्दूक अश्वनदी में से चम्बल नदी में, उसमें से यमुना में और अन्त में गंगा नदी में तैरती हुई अंगदेश की राजधानी चम्पा नगरी में पहुँची। भाग्य की कैसी बिडम्बना? कहाँ का बालक कहाँ पहुँचा और वह भी बिल्कुल स्वस्थ। कुदरत के संकेतों को मानव की अल्प बुद्धि नहीं पा सकती। यह समझने के लिए श्रद्धा ही सच्चा मार्ग है।

राधा का पुत्र

अंगदेश की राजधानी चम्पानगरी में अधिरथ नामक एक क्षत्रिय रहता था। अधिरथ वीर योद्धा था। अश्वों का परीक्षक था। रथ हाँकने में कुशल था। वह सारथि का काम करता था, इससे सब लोग उसे सूत-सारथि कहते थे। वह हस्तिनापुर के धृतराष्ट्र का मित्र था।

अधिरथ के राधा नामक एक पत्नी थी, जो पवित्र एवं पतिव्रता थी। उस दम्पति के कोई बालक नहीं था। राधा प्रतिदिन सूर्यदेव की पूजा अर्चना करके कहती, 'हे सूर्यदेव मुझे पुत्र दो।'

एक दिन सवेरे अधिरथ स्नान करके खड़े-खड़े सूर्यदेव की आराधना करता था, उसी समय दूर प्रवाह में तैरती हुई एक सन्दूक जैसी दीख पड़ी। सन्दूक तैरती हुई नजदीक आने लगी, तब उसने तट पर लाकर रखी। सन्दूक खोलते ही उसे एक सुन्दर दैदीप्यमान बालक दिखाई पड़ा। मानो सूर्य भगवान ने अधिरथ की प्रार्थना सुनकर उसको पुत्र दिया हो। अधिरथ बालक को लेकर घर पर आया।

अधिरथ पत्नी से कहने लगा, 'भगवान ने हमारी प्रार्थना सुनी। हमें बालक दिया। अब यही हमारा पुत्र है।' राधा भी बालक को देखकर आनन्दित हुई। भगवान ने उस पर बड़ी अनुकम्पा की और उसका वंध्यत्व दूर किया।

यह वही बालक था जो पृथा को सूर्य से पैदा हुआ था और नदी में बहा दिया गया। अधिरथ ने इसका नाम वसुषेण रखा, जो बाद में कर्ण के नाम से विख्यात हुआ।

कर्ण का आगमन शुभ निकला। निःसंतान राधा के अनेक पुत्र पैदा हुए। कर्ण के आने के बाद अधिरथ के भाग्य का सितारा भी चमकने लगा। मानो उसका भाग्य ही बदल गया। अधिरथ के कुटुम्ब में कर्ण का भारी मान था। राधा के अन्य पुत्र कर्ण को बड़ा भाई मानते थे।

कर्ण बड़ा हुआ। उपनयन संस्कार देकर उसे गुरु के यहाँ शिक्षा के लिए रखा गया। कर्ण ने कई प्रकार की विद्याएँ सीखीं। धनुर्विद्या में वह अप्रतिम रहा।

अधिरथ कर्ण को लेकर हस्तिनापुर आया। वहाँ राजकुमारों के साथ कर्ण ने कृपाचार्य और द्रोण गुरु से विद्या पाई। उसकी ओर कोई भी ध्यान ही न देता था, किन्तु कर्ण अपने चातुर्य से सब कुछ शीघ्र सीख लेता था।

कर्ण कहता कि उच्च या शूद्र कुल में जन्म पाना तो भाग्य की बात है। मनुष्य अपनी कुशलता से बड़ा बन सकता है। सच ही है कि कर्ण आप अपने बल से बड़ा योद्धा एवं दानी हुआ।

पाण्डु के पुत्र

आज पाण्डु उदासीन थे। शतश्रृंग के मुनि पाण्डु को अपने साथ न ले गए। उनको निःसंतानत्व अखरने लगा। पुत्र खुद का ही अंश, उत्तम बान्धव, कुलदीपक और वृद्धावस्था की यष्टि है। अरे ! निर्दोष भाव से की गई भूल के लिए क्या आजन्म निःसंतान रहना पड़ेगा ? किन्तु अंधेरे में दीप हो उसी तरह कुन्ती ने दुर्वासा के आशिष की बात कही। पाण्डु के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। कुन्ती से कहने लगे, 'देवी भगवान की अनुकम्पा हुई। सच्चाई, क्षमा एवं धैर्य हो और पूर्णिमा के चाँद जैसी शीतल प्रतिष्ठा प्रसारित करे, वही सच्चा पुत्र। तुम ऐसा पुत्र प्राप्त करो।'

कुन्ती ने राजा की इच्छा का अनुमोदन किया। उसने धर्मराज यमधर्म को प्रसन्न किया। उससे जो पुत्र प्राप्त हुआ उसका नाम मुनिजनों ने युधिष्ठिर रखा। वह बलवान शत्रु के सामने युद्ध में खड़ा रहने की क्षमता वाला था। बाद में पाण्डु ने सोचा कि धर्म का विनाश करने के लिए दुष्ट तत्व पनप रहे हैं। धर्म को भी बल, पराक्रम एवं मेघावी व्यवस्था शक्ति की मदद चाहिए।

पाण्डु ने कुन्ती से कहा, 'देवी धर्म के सहायकों की भी जरूरत तो पड़ेगी न ?'

पाण्डु की इच्छा जानकर कुन्ती ने वायुदेव को प्रसन्न किया। उन्होंने कुन्ती को ऐसा पुत्र दिया, जिसने जन्म के साथ ही पत्थर को भी चूर कर दिया। वह था भीम। तदनन्तर कुन्ती ने इन्द्रदेव को प्रसन्न किया। उनके द्वारा कुन्ती ने देवों के अधिपति जैसा पराक्रमी पुत्र प्राप्त किया। वह था अर्जुन। महाभारत के युद्ध का विजेता वीर।

कुन्ती ने कहा, 'अब मेरा कर्तव्य पूरा हुआ। आपकी इच्छा हो तो माद्री भी पुत्र प्राप्त कर सकती है।'

तीन देवांशी पुत्र पाकर आनन्दित पाण्डु को उसकी उदारता एवं संयमशीलता स्पर्श कर गई। पाण्डु ने कहा, ठीक है। माद्री तेरी छोटी बहिन है। वह पुत्र प्राप्त करे।

कुन्ती ने माद्री को अश्विनी कुमारों का मन्त्र दिया। अश्विनी कुमारों ने माद्री को दो जुड़वां पुत्र दिये। बड़ा नकुल और छोटा सहदेव। दोनों कुमार अश्विनी कुमारों जैसे स्वरूपवान, अनुकम्पा वाले, चिकित्सक एवं वीर थे।

शतश्रृंग के मुनिवरों ने सब कुमारों को संस्कार दिये, विद्याएँ दीं और उत्तम क्षत्रिय के गुणों का सिञ्चन किया। साथ में सत्य एवं धर्म की शिक्षा भी दी।

समय आने पर पाण्डवों ने मुनिजनों की दी हुई शिक्षा को सार्थक किया।

धृतराष्ट्र की संतति

हस्तिनापुर में रानी गान्धारी के महल में भोजन की वेला बीती जा रही है। छोटे बड़े सबने भोजन कर लिया है। लेकिन धृतराष्ट्र और रानी गान्धारी अभी तक अतिथि के आने की राह में भूखे बैठे हैं। अतिथि को भोजन कराके स्वयं भोजन करना गृहस्थ का धर्म है।

इसी समय मुनि कृष्ण द्वैपायन वहाँ आ पहुँचे। देवी गान्धारी ने उन्हें भोजन परोसा। भोजन करके अत्यन्त सन्तुष्ट हो मुनि ने कहा, 'पुत्री, तेरी सेवा से मैं प्रसन्न हूँ। तुझे जो भी चाहिए माँग ले।'

गान्धारी ने कहा, 'पिताजी, आप तो कुरुकुल के परम हितैषी हैं। आपकी सेवा हमारा धर्म है। आपको प्रसन्न देखकर ही मैं धन्य हूँ। फिर भी अगर देना चाहें तो यही आशीर्वाद दें कि मेरे बुद्धिमान पुत्र हों।'

द्वैपायन ने कहा, 'तथास्तु। तू सौ बुद्धिमान और वीर पुत्रों की माता बनेगी।'

मुनि के वरदान से सब प्रसन्न हो गये। कुछ ही समय में गान्धारी ने गर्भ धारण किया। एक वर्ष बीत चुका, लेकिन प्रसव न हुआ। उसी समय शतश्रृंग में कुन्ती भी सगर्भा बनी और उसने युधिष्ठिर को जन्म दिया। फिर भी गान्धारी को प्रसव नहीं हुआ। पहले गर्भवती तो वह बनी थी, कुन्ती तो बाद में। फिर भी प्रथम प्रसंव कुन्ती को हुआ। अब कुन्ती का पुत्र राज्य का उत्तराधिकारी बनेगा। इसी ईर्ष्या की जलन से गान्धारी बड़ी दुःखी हो गई। निराशा ही में उसने प्रहार करके गर्भपात कर लिया। यह बात जानकर द्वैपायन मुनि दौड़ते वहाँ आ पहुंचे। गान्धारी को डाँटा और कच्चे गर्भ की रक्षा की। उसी में से दुर्योधन, दुःशासन आदि एक सौ पुत्र और दुःशला नामक एक पुत्री का जन्म हुआ। जिस दिन हस्तिनापुर में दुर्योधन पैदा हुआ, उसी दिन शतश्रृंग में कुन्ती ने भीम को जन्म दिया।

गान्धारी की एक वैश्य दासी धृतराष्ट्र की सेवा में थी। उसे भी धृतराष्ट्र से एक पुत्र हुआ। जिसका नाम था युयुत्सु। माता-पिता की स्वार्थबुद्धि के कारण दुर्योधन आदि भी स्वार्थी, ईर्ष्यालु एवं नीच स्वभाव के बने। जैसे माता-पिता, वैसे ही बालक।

दुर्योधन के जन्म समय बहुत अपशकुन होने लगे। विदुर ने तो कहा भी कि यह पुत्र कुरुकुल का विनाश करने वाला बनेगा। इसे त्याग देना ही ठीक रहेगा।

लेकिन अविवेकी पुत्र प्रेम वाला धृतराष्ट्र यह नहीं कर सका।

धृतराष्ट्र का निर्बल पुत्रप्रेम कुरुकुल के विनाश का निमित्त बना।

पाण्डु की मृत्यु

किन्दम मुनि के शाप से पाण्डु को बड़ा दुःख हुआ था। पाण्डु सद्गुणी था। प्रजा के हित की चिन्ता करने वाला राजा था। कुरुकुल के लिए उसमें भक्तिभाव था। दादी सत्यवती, वृद्ध भीष्म, दोनों माताएँ, भाई धृतराष्ट्र और विदुर सबको पाण्डु बहुत प्यार करते थे। इसी कारण शाप के दुःख से दुःखी पाण्डु ने सभी सुख और सभी प्रकार के राजवैभव को छोड़ दिया और स्वयं वानप्रस्थ बन गए। पत्नियों के साथ शतश्रृंग में तपश्चर्या करने लगे। धर्म-ध्यान के कारण उनका मन कुछ शान्त होने लगा।

अब उनके देवों के दिये हुए पाँच पुत्र थे। शाप का शूल तो मानो दूर ही हो गया था। पाण्डु फिर संसारी बन गये। शाप का पश्चाताप क्षणिक हो रहा। मनुष्य इसी प्रकार विवेक खो बैठता है। विवेक भूले कि विनाश के सैकड़ों मार्ग खुलने लगते हैं। पाण्डु का भी यही हुआ।

बसन्त ऋतु आयी। शतश्रृंग की बसन्त यानी अपार शोभा। वैसे तो ऐसी कई बसन्तें पाण्डु ने शतश्रृंग में बिताई थीं। पर तब उनका मन तप में लगा हुआ था। अब सुख की कल्पनाओं में मग्न पाण्डु बसन्त के प्रभाव से मुक्त न रह पाये। मादक पवन, रंग-बिरंगे फूल, मधुर गन्ध सब उनको भाने लगा।

चारों ओर किंशुक और चंपा, आम की मंजरी, जलाशयों में सुनहरे, लाल एवं श्याम कमल वातावरण को मादक बना रहे थे। मधु के लोभी भ्रमर की भाँति पाण्डु ऋतुश्री के रस का पान करने लगे। महीन वस्त्र पहने हुए माद्री के कंधे पर हाथ रख के भ्रमण करते पाण्डु के मन को यह मादकता छूने लगी। तप, विवेक, एवं संयम सब कुछ बसन्त की वायु में उड़ने लगा। विह्वल पाण्डु ने माद्री को बाँहों में भर लिया। आज वे काम-विकार के सामने झुक गये थे। अब तो जो होना था वही हुआ। शाप के कारण काम की उत्तेजना में ही पाण्डु मृत्यु के आधीन हो गये। अत्यन्त व्याकुल माद्री विलाप करने लगी। 'अरे हाय ! क्षण में यह सब क्या हो गया।'

कुन्ती वहाँ दौड़ आई। सौभाग्य लुट गया देख वह भी करुण क्रन्दन करने लगी। रानियाँ बड़ी सावधानी बरतती थीं, परन्तु पाण्डु के असंयम ने उनके सभी प्रयत्न निष्फल बना दिये। एक ही दोष सभी गुणों को मिटा देता है। पाण्डु को उनके असंयम के दोष ने मारा। मुनि के शाप और असंयम के कारण ही उनकी मृत्यु हुई।

असंयम का दोष ही सब दुःखों का मूल है।

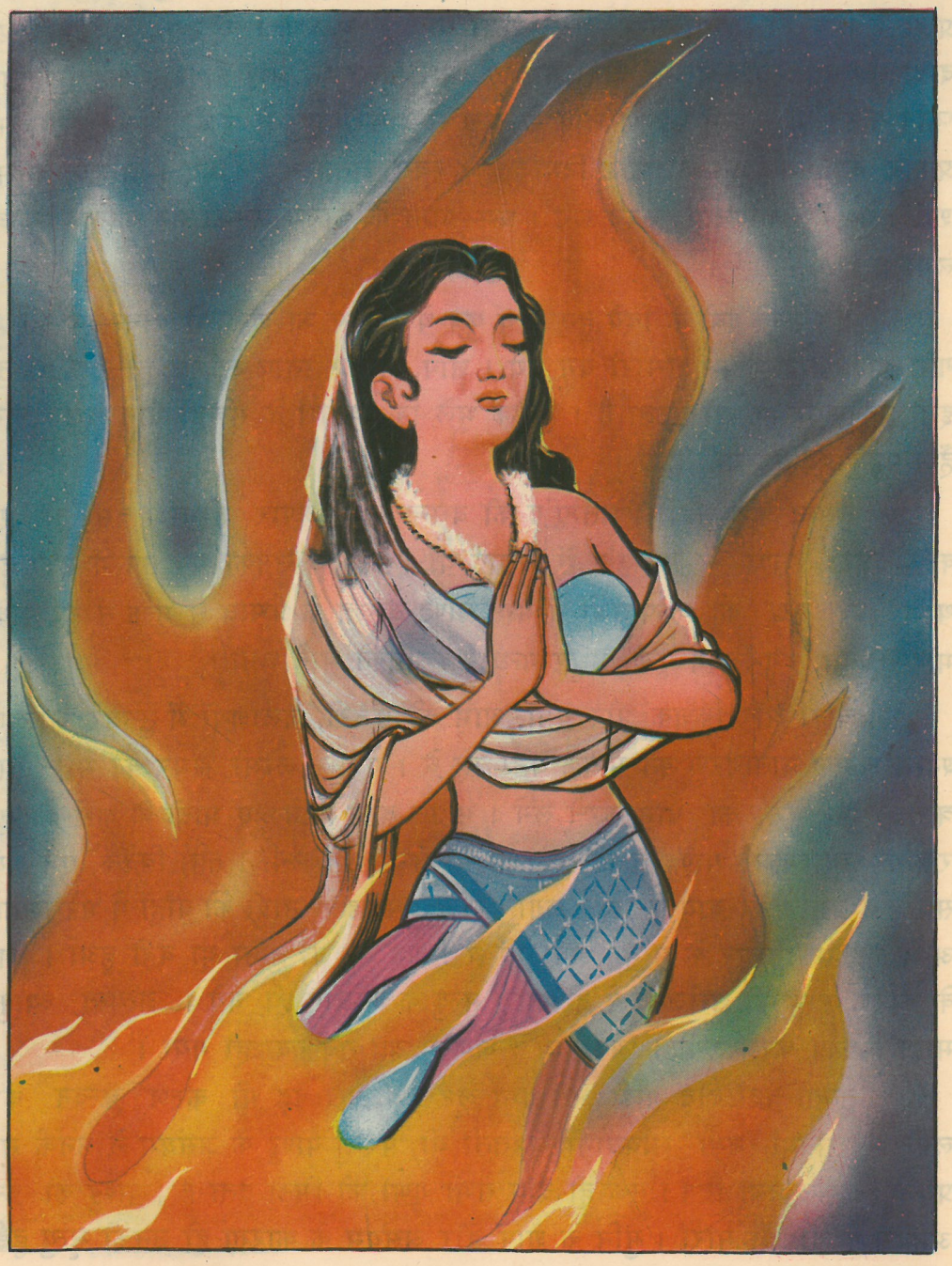

माद्री की सहयात्रा

असंयमी पाण्डु को माद्री ने बहुत रोका। परन्तु वासना की प्रबलता जीत गई। उसी के मारे पाण्डु रुक न सके और उनकी मृत्यु हो गई।

परिणाम का भान होने के पहले ही क्षण में पाण्डु लुढ़क गये। जमीन पर गिरी उनकी अचेत देह को देख माद्री व्याकुल हो उठी। माद्री विलाप करने लगी। उसका विलाप सुन, घबराई हुई कुन्ती और पाँचों पाण्डु पुत्र वहाँ दौड़ आये।

माद्री ने कहा, 'तुम अकेली यहाँ आओ। बच्चों को वहीं रहने दो।' कुन्ती माद्री के पास पहुँची। परिस्थिति देख समझ गई। धैर्य की गाँठ छूट गई। ऊँचे से विलाप करती वह बोल उठी, 'हाय मुझ अभागिन ने कितना ध्यान रखा, राजा को तप के मार्ग पर चढ़ाया, जितेन्द्रिय बनाया, फिर भी यह क्या बना ? ओ माद्री तू भी कैसे भान भूल बैठी। तूने राजा को रोका क्यों नहीं ?'

रोते हुए माद्री ने कहा, 'बहन मैंने उनको बहुत रोका। परन्तु मुझ अबला की उनके सामने एक न चली। मेरे कारण ही राजा की मृत्यु हुई। मेरा ही दोष है तो अब मुझे पति के साथ जाने की इजाजत दे दो। ये दो पुत्र भी तुम्हारे ही हैं। इन्हें तुम्हारी ममता ही अधिक है। तुम धीरजवान भी हो। हस्तिनापुर की भी तुम जानकार हो। पुत्रों का पालन करो। मैं पति के साथ चलूँगी।

कुन्ती ने कहा, 'मैं तुमसे बड़ी हूँ। धर्म के अनुसार मुझे ही पति के साथ जाना चाहिए। तुम्हीं पुत्रों का पालन करना। राजा की पटरानी के नाते मैं ही सती होऊँगी। यही उचित भी है।' किन्तु बहुत समझाने पर भी माद्री का मन नहीं माना। उसके ही कारण राजा की मौत हो गई। यह बात उसे भुलाये नहीं भूलती थी। अन्त में माद्री के प्रति स्नेह के कारण कुन्ती ने उसे सहगमन करने की अनुमति दे दी।

शतश्रृंग के मुनि आ पहुंचे। सबके मुंह पर दुःख का भार था। पाण्डु जैसे सत्पुरुष की मौत का किसे दुःख न हो ? अपने उत्तम गुणों के कारण पाण्डु सब ऋषियों में प्रिय हो गये थे। यही कारण था कि सभी मुनि बड़े दुःखी थे।

मुनिजनों ने अंत्येष्टि का अन्तिम यज्ञ पाण्डु के अग्निहोत्र में किया और उसी अग्नि से चिता जलाई। देखते-ही-देखते पाण्डु और माद्री के शरीर भस्मीभूत हो गये।

धर्म के मार्ग पर चलते-चलते यदि मौत भी आ जाये तो धीर लोग उसे सहज भाव से स्वीकार करते हैं। अधीर अवश भी मृत्यु के अधीन तो होते ही हैं। पाण्डु का यही हुआ।

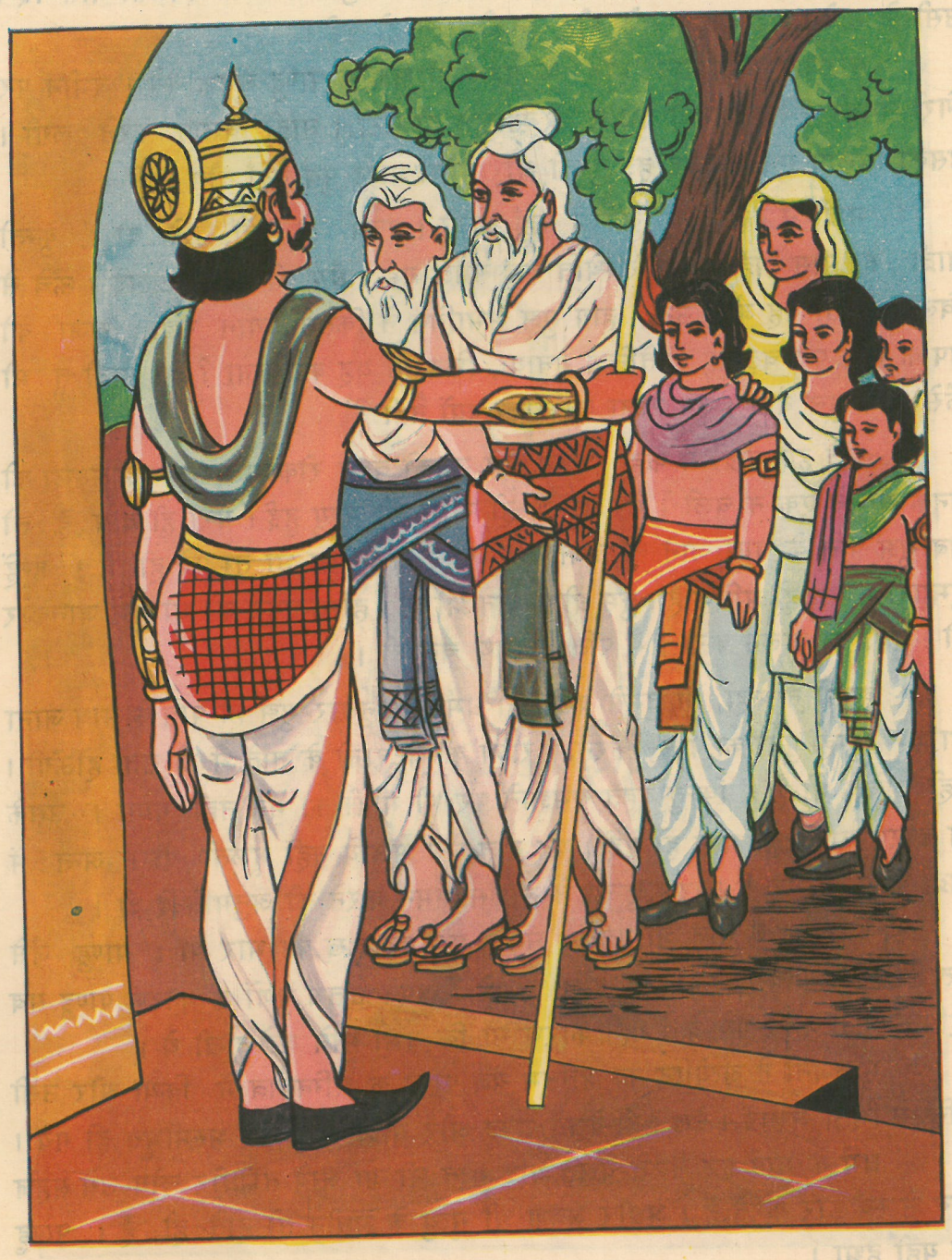

पाण्डव हस्तिनापुर में

पाण्डु और माद्री का अग्नि-संस्कार करने के बाद शतश्रृंग निवासी सब मुनि एकत्र हुए।

एक वृद्ध मुनि बोले, हमारे तपोबन्धु पाण्डु तो चल बसे। उनकी एक रानी ने उनका साथ दिया। अब हमें बन्धु-धर्म पूरा करना चाहिए। रानी कुन्ती और पाँचों पुत्रों को उनके कुल में पहुँचाना चाहिए। पाण्डु और माद्री की उत्तरक्रिया वहाँ हो सके इसलिए उनके शरीरों के अवशेष भी हमें हस्तिनापुर पहुँचाने चाहिए।

मुनिजनों ने कहा, 'हमें बन्धु धर्म का पालन करना ही चाहिए। हम आपकी आज्ञा के अनुसार सब व्यवस्था करेंगे।'

हस्तिनापुर पहुँचकर वृद्ध ऋषि ने दुर्गपाल के साथ संदेश भेजा, 'कहो, कुन्ती और पाण्डव कुमार आये हैं।'

दुर्गपाल ने तुरन्त भीष्म को खबर पहुँचाई। सारे नगर में वायुवेग से यह समाचार फैल गया। पाण्डु राजा का अवसान हो गया है। उनकी रानी पृथा और पाँच कुमार शतश्रृंग से आए हैं।

भीष्म ने ऋषिजनों का धर्मविधि के अनुसार स्वागत किया। वृद्ध ऋषि ने कहा, 'रानी पृथा और इन पाँचों कुमारों को आप स्वीकार करें। हमने इन कुमारों को वेद एवं शास्त्र पढ़ाये हैं। ये सब वीर और विनयी हैं। ये कुरुकुल को उज्ज्वल बनायेंगे। पाण्डु और माद्री के शरीरों के ये अवशेष हैं। उन दोनों की धार्मिक उत्तर-क्रिया करना। हमारा कार्य पूरा हो गया। अब हम चलेंगे।' यह कहकर मुनिजन शतश्रृंग को लौट गए।

भीष्म और धृतराष्ट्र ने भली प्रकार पाण्डु एवं माद्री की उत्तरक्रिया की। उनके पीछे, गायें, भूमि, सुवर्ण, अन्न आदि का खूब दान दिया। कुन्ती और कुमारों को रहने के लिए एक महल दे दिया।

वृद्धा माता सत्यवती और राजमाता अम्बिका और अम्बालिका से यह आघात सहा नहीं गया। मुनि द्वैपायन ने उन्हें शान्त करते हुए कहा, कुरुकुल का बुरा समय मुझे दिखाई पड़ता है। तुम यह संकट नहीं देख सकोगी। अब तुम्हें वन में जाकर तपश्चरण करना चाहिए।

माता और रानियाँ वनवासी बनीं।

परन्तु पाण्डवों के आगमन की बात दुर्योधन वगैरह धृतराष्ट्र-कुमारों को भायी न थी।

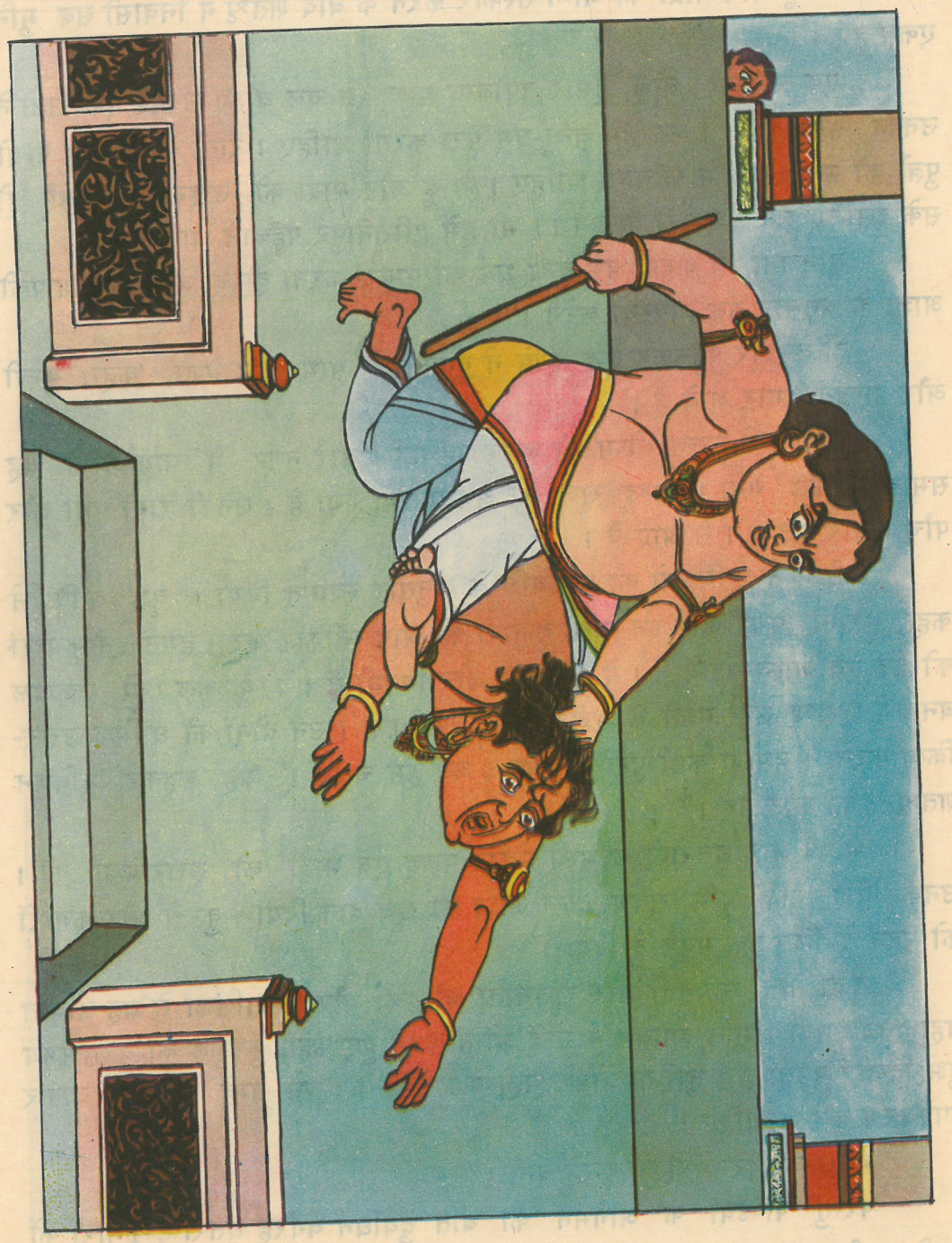

नटखट भीम

पाण्डुकुमार हस्तिनापुर में रहने लगे। पितामह भीष्म ने कुरु कुमारों के शस्त्रास्त्र शिक्षण का काम कृपाचार्य को सौंपा। कुरु कुमार पढ़ते और आनन्द करते।

भीम शरीर-बल में सब कुमारों से बढ़कर था। उसके नटखट स्वभाव और शरारतों का कोई हिसाब न था। इमली-पीपरी के खेल में यदि भीम का दाव आता तो पेड़ पर चढ़ने की तकलीफ न करके पेड़ को ऐसे हिलाता कि ऊपर चढ़े हुए सब पके फलों की तरह नीचे गिर पड़ते। किसी का सर फूटता, किसी का हाथ-पाँव टूटता।

नदी में कुमार सब नहाते हों और अगर भीम के मन में आया तो दस-पाँच के पाँव पकड़कर गहरे पानी में खींच ले जाता और दम घुटता तब छोड़ता। आटा-पाटा जैसे खेलों में भीम के थप्पड़ों और झपट से सब त्रस्त रहते।

भीम की शरारतों से धृतराष्ट्र-पुत्र सब त्रस्त थे। भीम का उन्हें बड़ा डर था। भीम के सामने वाले पक्ष में होकर वे कभी न खेलते।

भीम का प्रेम भी अकुलाने वाला। 'अहो मित्र' कहकर यदि किसी को थप-थपाता भी तो सामने वाला बल खा जाता। भीम बहुत ही सँभलता पर क्या करता हाथ ही ऐसा भारी था। उत्साह में आकर यदि भीम किसी से गले मिला तो आफत। उसकी हड्डियाँ चूर-चूर हो जातीं।

भीम केवल युधिष्ठिर से कुछ डरता था। युधिष्ठिर की उपस्थिति में भीम बिल्ली बन जाता।

माता कुन्ती भीम को खूब डाँटती। एक कुन्ती ही भीम का कान पकड़ सकती थी। पर भीम जो था, पत्थर पर पानी। कोई असर ही नहीं।

पाण्डवों का हस्तिनापुर आना धृतराष्ट्र-कुमारों को पसन्द न था, क्योंकि इससे दुर्योधन का राज्य-प्राप्ति का अधिकार नष्ट हुआ था। इस पर भीम सबको तंग करता। उनके लिए भीम सबसे बड़ा भय था। युधिष्ठिर, अर्जुन, सहदेव एवं नकुल का बुद्धिबल भी कई धृतराष्ट्र कुमारों से बढ़िया था। परिणाम यह हुआ कि धृतराष्ट्र-कुमार पाण्डु-कुमारों से ईर्ष्या करने लगे। भीम की शरारतों से तंग आकर वे उसका कोई उपाय ढूँढ़ रहे थे।

अन्त में सुबल कुमार शकुनि की प्रेरणा से उन्होंने एक घातक उपाय करने की ठानी।

विष भोजन

दुर्योधन ने प्रस्ताव रखा—'हम वन भ्रमण को चलें। गंगा किनारे प्रमाण-कोटि सुन्दर स्थान है। मजा आयेगा।'

सब कुमार राजी हो गये। गुरुजनों की इजाजत ले सब प्रमाणकोटि पहुँच गये।

सुबल कुमार शकुनि की सलाह के अनुसार दुर्योधन ने निवास, भोजन और आनन्द प्रमोद की व्यवस्था पहले ही से करवाई थी। खासतौर पर विष-भोजन की व्यवस्था भीम के लिए थी। बलवान भीम मर जाये तो फिर युधिष्ठिर, अर्जुन वगैरह की धृतराष्ट्र-कुमारों को चिन्ता न थी। बल से भीम का मुकाबला करना आसान नहीं था। इसीलिए ऐसी नीच युक्ति सोची गई।

प्रमाणकोटि में मजेदार उद्यान था। एक क्रीड़ागृह भी था जो आधा पानी में और आधा बाहर था। आसपास के अनेक जलाशय रंग-बिरंगे कमलों से भरे हुए थे। वनराजि में अनेक लता मण्डप थे।

कुमार खूब खेले, खूब नहाए और जोरों की भूख लगने पर सबके सब भोजन करने बैठे। दुर्योधन आग्रह करके सबको खिला रहा था। भीम को तो खास तौर से। उसके मुँह में तो वह मिठाई ठूँस देता और भीम हँसते-हँसते ही सब स्वाहा कर जाता। खा-पीकर सब सोने लगे। भीम को खूब नींद आ रही थी। एक एकान्त स्थान में नदी के किनारे जाकर वह सो गया। मिठाई में मिलाये विष का अब असर होने लगा। नींद ही में भीम अचेत हो गया। दुर्योधन इसी की टोह में था। जंगली लताओं से बाँधकर उसने भीम के शरीर को गंगा के प्रवाह में लुढ़का दिया। अचेत भीम का शरीर नदी के तल पर जा पहुँचा। वहाँ कुछ नाग कुमार खेल रहे थे। उन्होंने क्रुद्ध होकर अचेत भीम को जहरीला दंश दिया।

परन्तु भीम तो भान में आकर खड़ा हो गया। वह तो अचम्भे से दंग हो देखता ही रह गया। नागराज वासुकि और वृद्ध नागपति आर्यक वहाँ आ पहुँचे। आर्यक ने भीम को पहचान लिया। आर्यक की दौहित्री कुन्ती का वह पुत्र है—यह जानने में उसे देर न लगी। आर्यक ने भीम की सब बातें जान लीं। उसके जहर का असर दूर करने के लिये उसे अमृत-रस पिलाया। सात घड़े रस पीकर भीम शान्ति से सो गया। तब जाके विष का असर कम हुआ और पहले से भी ज्यादा स्फूर्ति आगई।

इस तरह आर्यक नाग के कारण भीम बच गया।

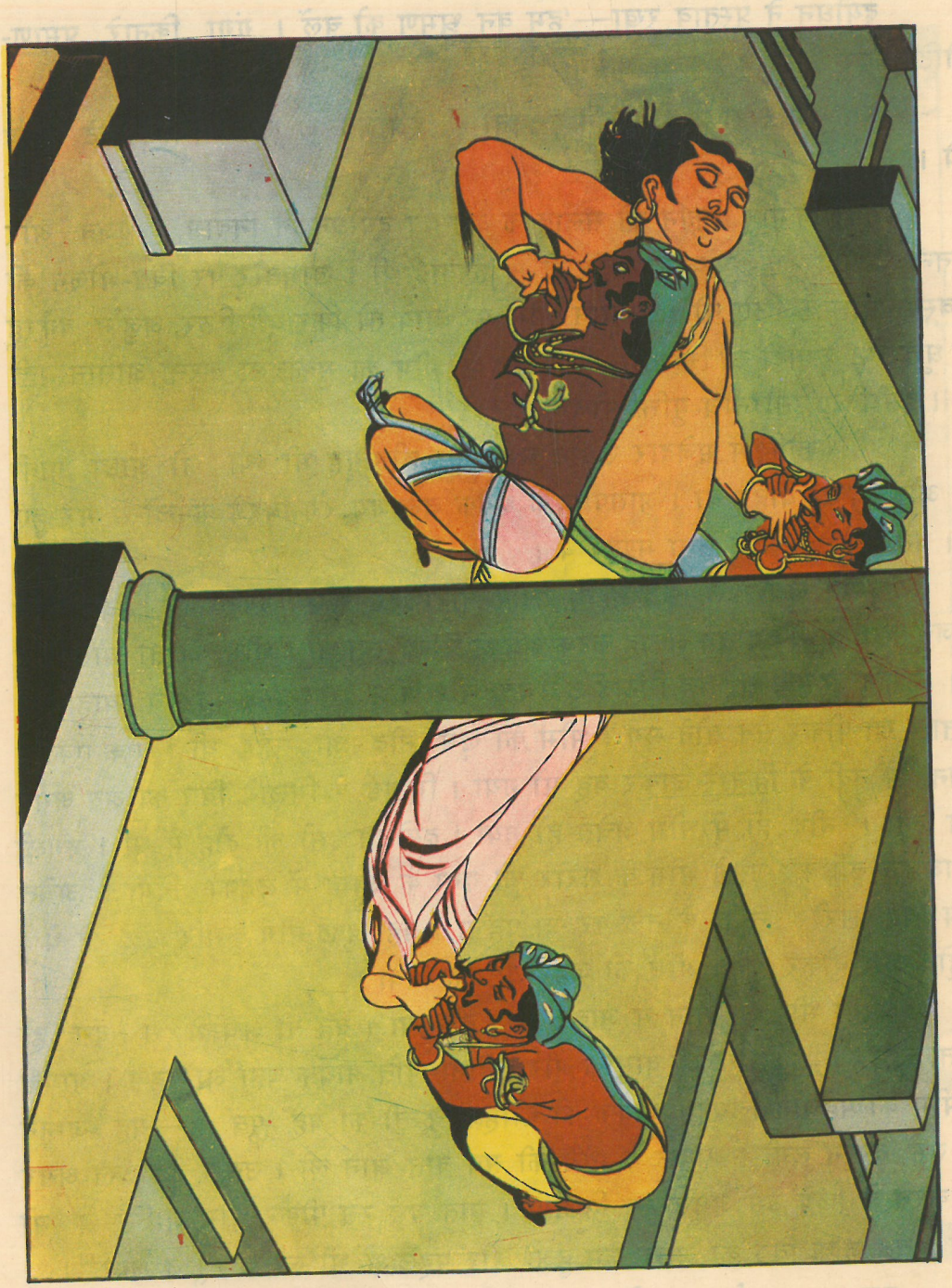

भीम की वापसी

प्रमाणकोटि में शाम ढल रही थी। कुरु कुमार वापस लौटने की तैयारियाँ करने में लग गए थे। युधिष्ठिर ने देखा कि भीम कहीं नहीं दीख रहा।

उन्होंने अर्जुन से कहा, 'ज़रा देखो तो, भीम कहाँ है।' लेकिन अर्जुन को भी भीम न मिला। दुर्योधन ने कहा, 'अरे ! भीम को भी कहीं खोजना पड़ेगा ! खूब खाकर दौड़ा होगा हस्तिनापुर की ओर। अब तक तो पहुँच भी गया होगा।'

युधिष्ठिर ने सोचा, 'हो सकता है। अब उसे टोकना पड़ेगा। ऐसे भी कोई पूछे बिना भटकता है भला ? यहाँ चिन्ता कितनी होती है।'

कुमार हस्तिनापुर पहुँच गए। युधिष्ठिर ने सीधे जाकर कुन्ती माता से पुछा, 'माँ भीम आया है ?' माता कुन्ती का माथा ठनकने लगा। जरूर भीम को कुछ हुआ होगा। 'जा जरा विदुर को बुला ला।' उसने युधिष्ठिर से कहा। युधिष्ठिर ने विदुरजी को बुलाया। उन्होंने पृथा को ढाढ़स बँधाकर कहा, 'कुछ हुआ है जरूर, लेकिन भीम निर्विघ्न वापस आ जाएगा। मैं देखता हूँ। पर हाँ आप किसी को बता न दें और दुर्योधन पर नज़र रखना।'

उस ओर अपने नाना आर्यक नाग के घर अमृत रस पीकर भीम तो ताजा हो गया था। उलटे उसके शरीर में मानों हाथी का बल आ गया था।

नाना आर्यक ने कहा, 'बेटे अब तू झट घर को लौट जा। मेरी बेटी बेचारी पृथा चिन्ता से मर रही होगी।'

भीम ने कहा, 'नानाजी आप कहते ही हैं तो लौट जाता हूँ। नहीं तो मुझे तनिक भी जल्दी नहीं है। जाने पर दुर्योधन को तो जरूर देख लूँगा।'

आर्यक ने कहा, 'बेटे मैं हस्तिनापुर की सब कारिस्तानी जानता हूँ। अभी तो तुम सब धीरज से शान्त रहो। यदि वन में जाना हो तो मेरा नाम लेना। सब नाग तुम्हारी सहायता करेंगे। फिर आर्यक और वासुकि ने भीम को अनेक रत्न, उत्तम औषधि और नागलोक में स्थान मिले ऐसे परिचय देकर उसे विदा किया।

हस्तिनापुर में धृतराष्ट्र कुमार बचे हुए पाण्डुपुत्रों के नाश की व्यवस्था में थे। युधिष्ठिर, विदुर वगैरह गुपचुप खोज चला रहे थे। उसी समय सात दिन के बाद टहलता, झूमता भीम हस्तिनापुर आ पहुँचा। माता, विदुर और भाइयों को विष-भोजन, आर्यक नाना की सहायता आदि बातों से वाकिफ़ किया और अभी शान्त रहने की बात भी बताई।

भीम को वापस आया देख दुर्योधन के मुँह पर कालिख पुत गई।

कृपाचार्य

जनमेजय ने पूछा, 'कुरु कुमारों के ये आचार्य कृप कौन थे भला ?'

वैशम्पायन ने कहा, 'गौतम गोत्र के कृपाचार्य और उनकी बहन कृपी को राजा शन्तनु ने पाला पोसा था।'

पर जनमेजय ने पूरी बात जाननी चाही, 'कृप और द्रोण की बात विस्तार से बताओ।'

वैशम्पायन ने कहा, गौतम गोत्र के मुनि शरद्वान कृप और कृपी के पिता थे। शरद्वान ने बड़ा तप करके धनुर्विद्या का ऐसा ज्ञान पाया कि खुद इन्द्र उनसे डरने लगा। इन्द्र राज्य लोभी तो था ही। उसने शरद्वान का भय टालने के लिए उन्हें तपोभ्रष्ट करने की नीच युक्ति सोची। उसने जानपदी नामक अप्सरा को शरद्वान के पास भेजा।

गंगा के तट पर शरद्वान का आश्रम था। चारों ओर शर वृक्ष का गहन वन था। शरद्वान वहाँ धनुर्विद्या का अभ्यास करते। जानापदी उनके आश्रम में पहुँची।

आश्रम में अचानक किसी रूपवती स्त्री को देख शरद्वान चकित रह गये। पर वे तो मुनि थे। तुरन्त मन पर काबू पा लिया और अपने धनुष-वाण वहाँ छोड़कर आश्रम त्याग कर वहाँ से चल दिये।

मुनि के मन के क्षोभ के परिणामस्वरूप जानपदी अप्सरा ने वहाँ शर वन में ही शरद्वान के पुत्र और पुत्री को जन्म दिया। बालकों को वन ही में छोड़कर जानपदी भी चल दी। क्षुद्र और कामी लोगों का वात्सल्य से क्या नाता ?

उसी समय शन्तनु राजा गंगा तट पर शर वन में शिकार को आये हुए थे। उनके एक सैनिक ने इन दो बालकों को देखा। शन्तनु समझ गये कि किसी तपस्वी और धनुर्विद्या में पारंगत की ये सन्तानें हैं। राजा को इन अनाथ बालकों पर तरस आ गया। उन्हें हस्तिनापुर ले आए, योग्य संस्कार किये, कृप-कृपी शन्तनु के पास बड़े होने लगे।

मुनि शरद्वान ने जब जाना कि उनकी सन्तानों को शन्तनुराजा हस्तिनापुर ले गये हैं, वे भी हस्तिनापुर को चल दिये। अपना परिचय दिया। बालकों के जन्म की कहानी बताई। और फिर मुनि ने कृप को वेद और धनुर्विद्या सिखाई। इस प्रकार कृप बड़े विद्वान और धनुर्विद्या के आचार्य बने। बाद में वे कुरु-कुमारों के आचार्य बने। कृपी के वय प्राप्त करने पर उसे भरद्वाज के पुत्र द्रोण के साथ ब्याह दिया गया।

इस प्रकार शन्तनु की कृपा से कृप और कृपी सुखी हो गये।

इसी से कहते हैं, सत्पुरुषों की संगति सर्वसुखदायी होती है।

गुरु द्रोण

भीष्म कुरु कुमारों के लिए किसी उत्तम धनुर्वेदाचार्य की खोज में थे। उत्तम गुरु ही उत्तम विद्या सिखा सकते हैं। द्रोण की योग्यता देख भीष्म ने उन्हें आदर सहित हस्तिनापुर में रख लिया और कुरु कुमारों की शिक्षा-दीक्षा का काम उन्हें दिया।

जनमेजय ने कहा, 'गुरु द्रोण की पूरी बात मुझे बताओ।'

वैशम्पायन बोले, 'महामुनि भरद्वाज गंगाद्वार पर हरद्वार में रहते थे। भरद्वाज बड़े कवि थे। उन्होंने वेद मन्त्र भी रचे थे। शस्त्रास्त्र विद्या के भी वे बड़े मर्मज्ञ थे।'

जनमेजय ने कहा, 'वाह ! वेदविद्या भी जानें और धनुर्विद्या भी। यह तो बड़ी अचरज की बात है।'

वैशम्पायन बोले, 'एक समय ऋषियों के साथ भरद्वाज मुनि गंगा-स्नान को गए। वहाँ धृताची नामक एक अप्सरा स्नान कर रही थी। उसका सौन्दर्य देख भरद्वाज का मन क्षुब्ध हो उठा। उन्होंने अपने क्षोभ को एक दोने में ले लिया। उस दोने—दोण में से उन्हें एक पुत्र मिला। वही पुत्र आगे चलकर द्रोण बना।

अपने पिता के पास रहकर द्रोण ने शास्त्र एवं शस्त्र सीखे। पिता के शिष्य अग्निवेश मुनि के पास से आग्नेय-अस्त्र की विद्या पाई। इसप्रकार द्रोण महान शस्त्राचार्य बने।

फिर द्रोण ने कृपी से विवाह किया। कृपी पतिव्रता थी। उसके एक पुत्र हुआ। जन्म के साथ ही वह बालक अश्व की तरह हिनहिनाया जिससे उसका नाम अश्वत्थामा रखा गया। द्रोण मुनिव्रत का पालन करते। किसी वैभव का संग्रह नहीं करते थे। एक गाय भी उनके पास नहीं थी। एक समय बालक अश्वत्थामा ने दूध के लिए जिद की दूध तो घर में था नहीं। पानी में आटा घोलकर उस पानी को ही दूध कहकर पिलाया। अब द्रोण को लगा कि और नहीं तो कुटुम्ब के लिये तो धन चाहिए ही। उन्होंने सुना कि परशुराम धन का दान कर रहे हैं। तो वे पहुँचे परशुराम के पास। परशुराम सारा धन दे चुके थे। पर द्रोण को भला निराश भी कैसे करते। उन्होंने अपनी धनुर्विद्या का उत्तम ज्ञान द्रोण को दिया। द्रोण धन्य हो गये। परशुराम जैसे महान गुरु के पास से उन्हें धनुर्विद्या का सारा ज्ञान मिला। उत्तम गुरु का मिलना भी बड़े भाग्य की बात है। फिर द्रोण अपने बाल-मित्र पांचालराज द्रुपद के पास धन पाने के लिए चल दिये।

संकट में सहायता करने वाला ही सच्चा मित्र होता है।

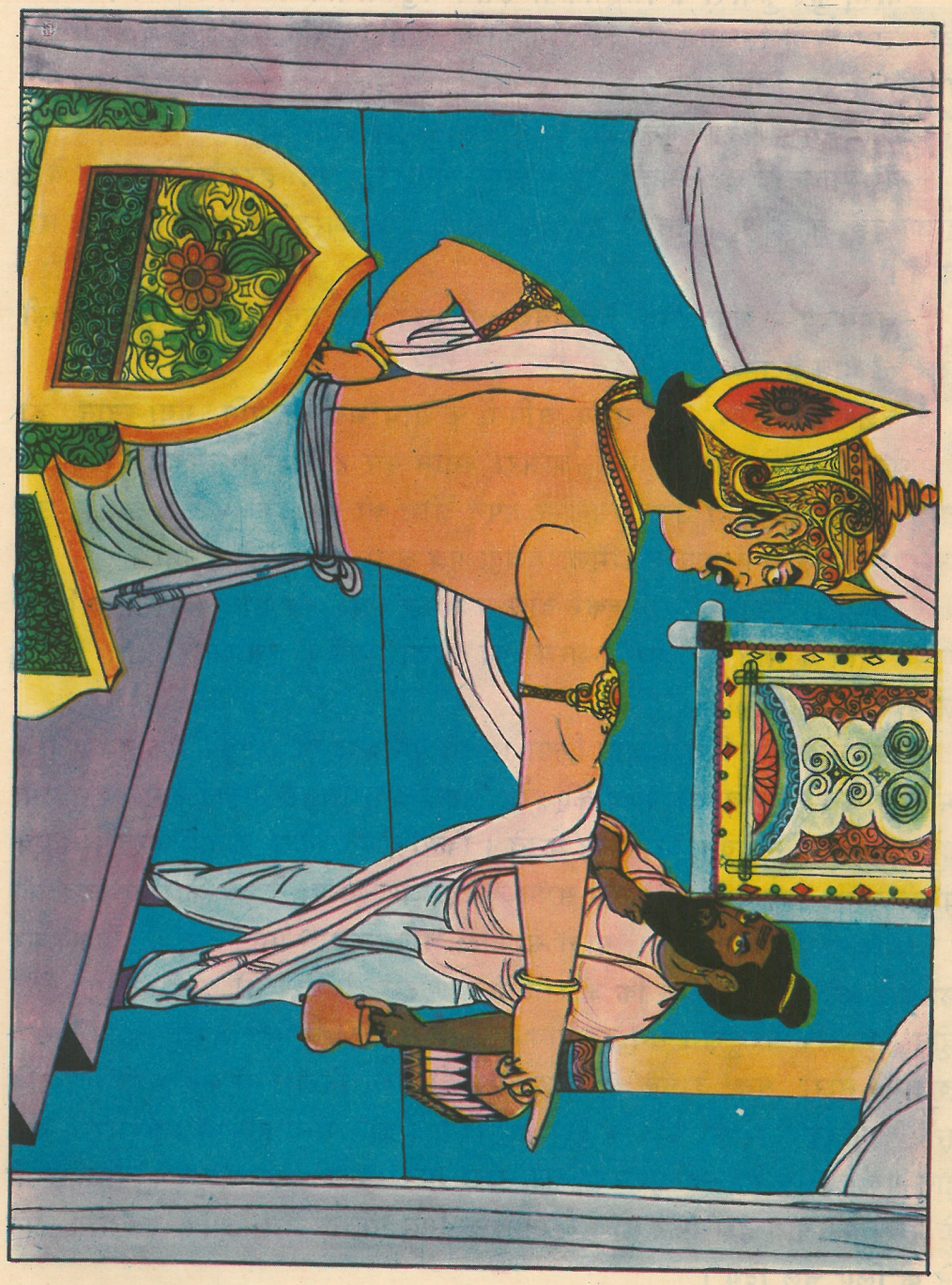

राजा द्रुपद

जनमेजय ने पूछा, 'द्रुपद राजा द्रोण के मित्र कैसे बने ?'

वैशम्पायन ने कहा, 'पांचाल देश के राजा पृषत थे। वे सोमक वंश के थे। पुत्र पाने के लिये वे वन में जाकर तप कर रहे थे। एक समय मेनका अप्सरा वहाँ आ पहुँची। पुत्र की इच्छा से राजा का मन द्रवित हो उठा। उनके पग के द्रव से एक पुत्र उत्पन्न हुआ। वही पुत्र द्रुपद कहलाया।

पृषत राजा ने द्रुपद को भरद्वाज मुनि के पास विद्यार्जन के लिए भेजा। भरद्वाज भी पृषत के प्रिय मित्र थे। ऐसे द्रोण और द्रुपद सहाध्यायी बने। बाद में दोनों अच्छे मित्र भी बन गये। कभी-कभी द्रोण पूछ बैठता, 'मित्र द्रुपद तू राजकुमार है। कल जाके तू राजा बन जाएगा। तब इस मित्र को भी क्या याद करेगा ?' द्रुपद कहता, 'द्रोण तू तो मेरा सदा का मित्र है। मेरा राज्य भी अपना ही समझो।'

समय बीतता गया। द्रुपद राजा बन गया। राज्य वैभव मिलते ही उसकी सब सरलता जाने कहाँ चली गई। वह गर्विष्ठ बनता गया। अभिमान मनुष्य को अविवेकी बनाता है। द्रुपद का भी यही हुआ।

दरिद्रता से हारे द्रोण को बालमित्र द्रुपद की याद आ गई। वे आशा सहित द्रुपद के घर को चले। साथ में पत्नी कृपी और पुत्र अश्वत्थामा थे।

पर यह क्या ? द्रुपद ने तो पहचाना भी नहीं।
द्रोण ने कहा, 'मित्र ! आश्रम में हम सहाध्यायी थे। क्या तुम्हें याद है ?'

द्रुपद बोला, 'मुनिवर ! बचपन की बातें छोड़ दो। कहाँ तुम दरिद्र मुनि और कहाँ मैं राजा द्रुपद ! हमारे साथ मैत्री सम्भव नहीं। मैत्री तो समान कक्षा के लोगों के साथ ही सम्भव है। ठीक है, दो-चार दिन रहो, खाओ-पीओ, पर मित्रता की बातें भूल जाओ।'

द्रोण को बहुत दुःख हुआ। गुस्सा भी चढ़ आया। वे बोले, 'राजन् न मुझे तुम्हारा भोजन चाहिए, न दक्षिणा। जब तुम्हारे समकक्ष बनूँगा, तब तुम्हारी मैत्री माँगने आऊँगा।' ऐसा कहकर द्रोण, पत्नी और पुत्र के साथ पांचाल देश से निकल गये। चले हस्तिनापुर की ओर। उनके मन में था, कोई अच्छा राजकुल मिल जाय तो उत्तम शिष्य तैयार करके द्रुपद को दिखा दूँ।

द्रुपद के अविवेकी गर्व ने और द्रोण के क्रोध ने बाद में बड़े विनाश का सर्जन किया। दुर्गुण का परिणाम बुरा ही होता है।

द्रोण की कुरु-कुमारों से भेंट

हस्तिनापुर आकर द्रोण कृपाचार्य के घर ठहरे। एक समय विचारों में ही वे घूम रहे थे कि उन्होंने कुछ शोरगुल-सा सुना। देखा तो कुरु-कुमार इकट्ठे हो कुछ ढूंढ रहे थे। बात कुछ इस प्रकार थी।

कुरु-कुमार यहाँ गुल्ली-डन्डा खेलने आये थे। खेल-ही-खेल में उनकी गुल्ली पास ही के एक कुएँ में जा गिरी। वे सोच रहे थे कि गहरे कुएँ से गुल्ली कैसे निकाली जाय ? तभी उन्होंने द्रोण को देखा। श्याम रंग के चिन्ता से कृश द्रोण के मुख पर विद्या का तेज जगमगा रहा था। सब कुमार उनके पास दौड़ चले। बोले, 'भगवन, हमारी गुल्ली इस कुएँ में गिर गई है। क्या आप निकाल देंगे ?'

द्रोण ने कहा, 'अरे ! तुम तो क्षत्रिय कुमार हो, धनुर्विद्या के ज्ञाता। एक गुल्ली भी नहीं निकाल सकते ?'

भीम बोला, 'भगवन हम तो छोटे बच्चे हैं। आप जानते हैं तो निकाल दीजिए।' द्रोण बोले, 'गुल्ली तो जरूर निकाल दूँगा। पर तुम्हें मेरे भोजन की व्यवस्था करनी पड़ेगी।'

युधिष्ठिर बोले, 'जरूर भगवन। हम भीष्म पितामह से कहेंगे। व्यवस्था हो जायेगी।' द्रोण ने कहा, 'ठीक है। देखो यह अपनी अंगूठी भी कुएँ में फेंकता हूं। गुल्ली के साथ इसे भी बाहर निकालूँगा।' कहकर अंगूठी कुएँ में फेंक दी। फिर उन्होंने मुट्ठी भर घास हाथ में ली। कुछ मन्त्र बोले और घास कुएँ में फेंकी। सब कुमारों ने आश्चर्य से देखा कि घास के तिनके एक-दूसरे से जुड़ गये। आखिरी तिनका कील की तरह गुल्ली में घुस गया और द्रोण ने तिनकों की जंजीर से गुल्ली को बाहर खींच निकाला। कुमारों ने कहा, 'उस अंगूठी को भी निकालिए।'

द्रोण ने धनुष-वाण हाथ में लिया। मन्त्रोच्चार करके तीर मारा। तीर अंगूठी को लिए बाहर आया। कुमारों के अचम्भे का कोई ठिकाना न था। उन्होंने सोचा, ऐसे उत्तम आचार्य अगर मिल जायें तो कितना अच्छा ! हम बड़े धनुर्धारी बन जायें। उन्होंने द्रोण से प्रार्थना की, 'भगवन ! हमें भी ऐसी विद्या सिखायेंगे ?'

द्रोण ने कहा, 'भीष्म चाहेंगे तो जरूर सिखाऊँगा।' भीष्म ने सारी बातें जानीं। ऐसे आचार्य को तो वे ढूंढ ही रहे थे। उन्होंने सम्मानपूर्वक द्रोण को बुलाकर कुरु–कुमारों की शिक्षा का भार स्वीकार करने की विनय की। उन्हें सुन्दर निवास दिया। गुरु द्रोण का पुत्र अश्वत्थामा भी कुरु कुमारों के साथ ही अध्ययन करने लगा।

कुरु-कुमारों की शिक्षा

गुरु द्रोण ने कुरु–कुमारों की शिक्षा का काम आरम्भ कर दिया। उनका निश्चय था कि कुरु-कुमारों को युद्ध-कुशल बनाकर उनकी सहायता से राजा द्रुपद को पराजित करके उसके मिथ्याभिमान का बदला लिया जाय।

एक समय एकान्त में कुरु कुमारों की परीक्षा करने के लिए उन्होंने कहा, 'तुम सब उत्तम कुल में जन्मे हो, उत्तम संस्कार वाले हो। मैं अपनी सारी विद्या तुम्हें पढ़ाऊँगा और तुम्हें कुशल योद्धा बनाऊँगा। इसके बाद तुम्हें मेरा एक काम करना है। बोलो करोगे ?'

और कुरु-कुमार तो गुरु को कुछ उत्तर न दे सके। अर्जुन ने फौरन उत्तर दिया, 'आप जो आज्ञा करेंगे मैं करूँगा।' अर्जुन का उत्तर सुनकर गुरु उस पर बहुत प्रसन्न हुए। तब से उस पर गुरु का पक्षपात बढ़ गया। अब गुरु खूब सावधानी से अर्जुन को पढ़ाने लगे। गुरु के प्रति अनन्य श्रद्धा और गुरु भक्ति के कारण अर्जुन की विद्या सफल हुई। वह अपने समय का महान धनुर्धारी योद्धा बन सका।

फिर तो अनेक राजकुमार गुरु द्रोण के शिष्य हुए। उनमें यादव कुमार भी थे। सूत पुत्र के नाम से परिचित कर्ण भी था। ये सब कुछ अभिमानी थे। वे अर्जुन जैसे गुरु भक्त न बन सके। परिणामतः उनकी विद्या इतनी सफल न हुई जितनी कि अर्जुन की। गुरु अनेक प्रकार की विद्या सिखाते थे। अश्व, राज रथ आदि के आरोहण का कौशल, खड्ग, मुष्टि आदि का द्वन्द्व युद्ध, संकुल युद्ध आदि अनेक प्रकार तो गुरु ने सिखाये ही। साथ-साथ आग्नेय, वारुण, वायव्य आदि मन्त्र युक्त शस्त्रास्त्रों के प्रयोग भी सिखाये। फिर भी ब्रह्मास्त्र नारायणास्त्र आदि प्रकार उन्होंने सबको न सिखाये। केवल अश्वत्थामा और अर्जुन ही वह सीखने के लिए योग्य थे।

एक समय अर्जुन जब ब्यालू कर रहा था कि अचानक पवन के कारण सब दीप बुझ गये। फिर भी अर्जुन का ग्रास मुख ही में जाता था। अर्जुन ने समझ लिया कि अभ्यास हो तो जैसे खाने में कोई भूल नहीं होती है, वैसे ही शस्त्रास्त्र चलाने में भी कुशलता मिल सकती है। अब अर्जुन अंधेरे में शब्दवेध कर सकता था। यह जानकर गुरु ने प्रसन्न होकर शब्दवेध का पूरा रहस्य अर्जुन को सिखा दिया। मन को केन्द्रित करके अभ्यास करने में अर्जुन का कोई जोड़ न था। इसीलिए गुरु ने उसे आशीर्वाद दिया, 'वत्स, तुम अद्वितीय धनुर्धारी बनोगे।' गुरु के आशीर्वाद के परिणामस्वरूप अर्जुन अपने समय का सबसे महान धनुर्धारी हुआ।

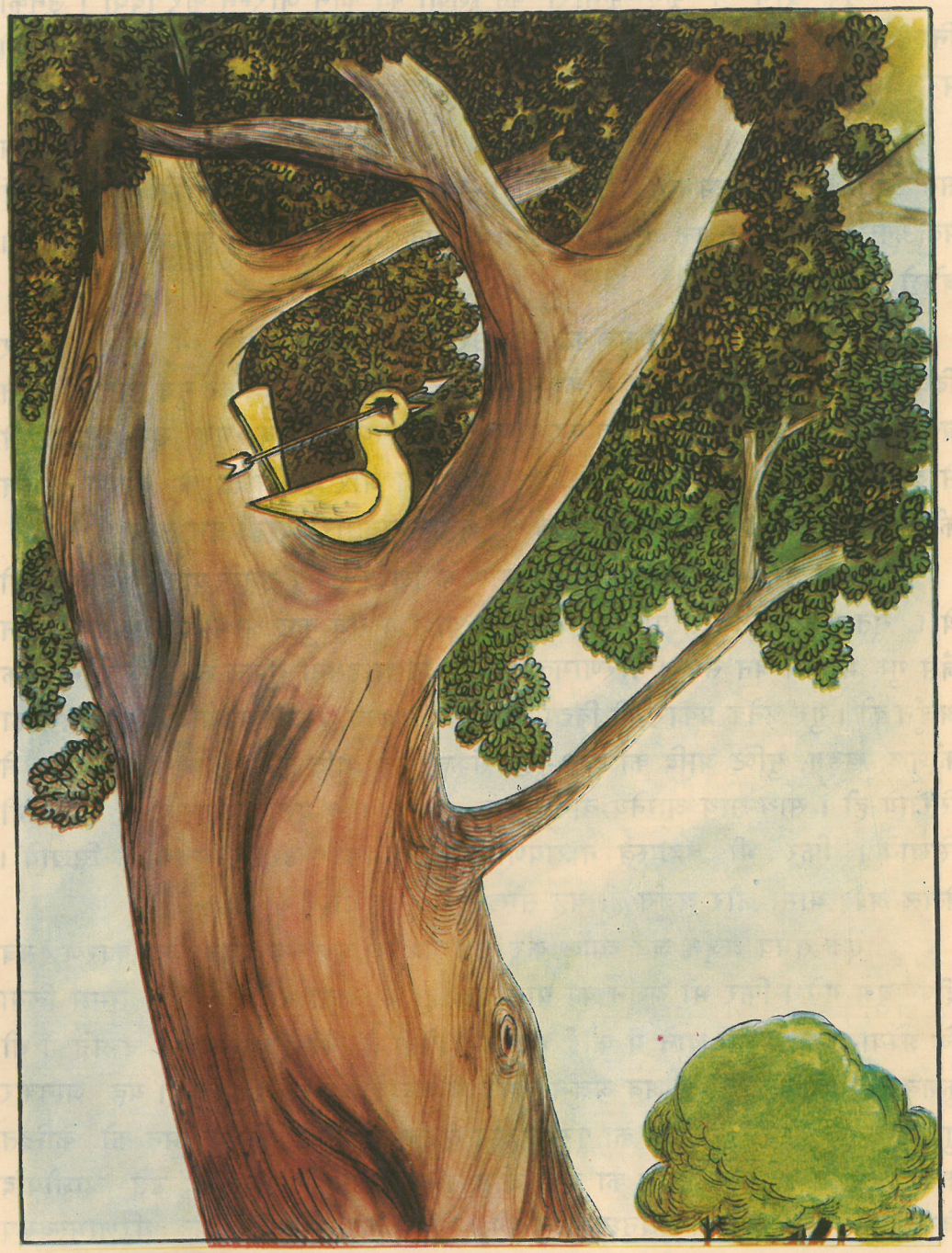

कुरु कुमारों की परीक्षा

गुरु द्रोण के पास कुरु-कुमारों की शिक्षा का काम चल रहा था। शरीर में बलवान भीम और दुर्योधन गदा-युद्ध में कुशल बने। सहदेव और नकुल खड्ग युद्ध में प्रवीण बने। कर्ण, अर्जुन और कुछ यादव कुमार कुशल धनुर्धर बने। रथ-युद्ध और संकुल-युद्ध में अर्जुन के समान कोई न था। उसमें प्रत्युत्पन्न मति और उचित समय पर उचित शस्त्र का प्रयोग करने का सत्वर निर्णय करने की क्षमता थी। अश्वत्थामा सभी विद्याओं का रहस्य जानता था।

अब गुरु सोचने लगे कि अचानक एक कसौटी करनी चाहिए। उन्होंने एक शिल्पकार के पास एक गिद्ध पक्षी बनवाया। मानो जीवन्त ही हो ऐसा। उसे चुपचाप एक वृक्ष पर रख दिया। फिर सब कुरु कुमारों को इकट्ठा किया। गुरु बोले, 'देखो वहाँ एक गिद्ध बैठा है। देखता हूँ तुममें से कौन बेधता है। सब तैयार रहो। मेरे कहने पर ही तीर चलाना है। फिर उन्होंने युधिष्ठिर को बुलाया। बोले, 'गिद्ध को बराबर देख के निशाना साधो।' युधिष्ठिर दक्ष हो खड़े हो गये।

गुरु ने पूछा, 'सामने वाला वृक्ष और यहाँ खड़े हुए सभी तुम्हें दीख तो रहे हैं?' युधिष्ठिर ने कहा, 'क्यों नहीं? सब कुछ दिखाई देता है।'

गुरु के मुँह पर खेद का भाव झलक गया। बोले, 'हट जाओ यहाँ से।' युधिष्ठिर दुःखी मुँह से हट गये। इसी प्रकार बहुत सारे कुमार गुरु की कसौटी पर असफल रहे। अब अर्जुन की बारी आई। गुरु ने कहा, 'सिद्ध 'निशाना साधो।' अर्जुन ने दक्ष हो निशाना लगाया। गुरु ने कहा, 'हम सबको तू देखता है क्या?'

अर्जुन ने कहा, 'नहीं। मैं तो मात्र उस पक्षी का मस्तक ही देख सकता हूँ। गुरु के मुँह पर हर्ष छा गया। 'छोड़ बाण'—बोल उठे। और सन्.....सन् करते अर्जुन के बाण ने गिद्ध पक्षी का मस्तक छेद कर गिरा दिया। गुरु ने अर्जुन को सीने से लगा लिया। उसका मस्तक सूँघा और आशीर्वाद दिया।

एक वक्त गंगा में नहाते हुए एक मगर ने द्रोण का पैर पकड़ लिया। गुरु चिल्ला उठे, 'बचाओ! बचाओ।' सबके-सब सन्न रह गये। पर अर्जुन ने त्वरा से सात बाण इस ताकत से छोड़े कि मगर पानी में ही कट गया।

अर्जुन द्रोण की दूसरी कसौटी में भी सफल रहा। गुरु को उसकी सफलता का विश्वास हो गया। उन्होंने कहा, 'बेटे समय आने पर मेरे साथ युद्ध करना, इतना मैं तुझसे माँगता हूँ।'

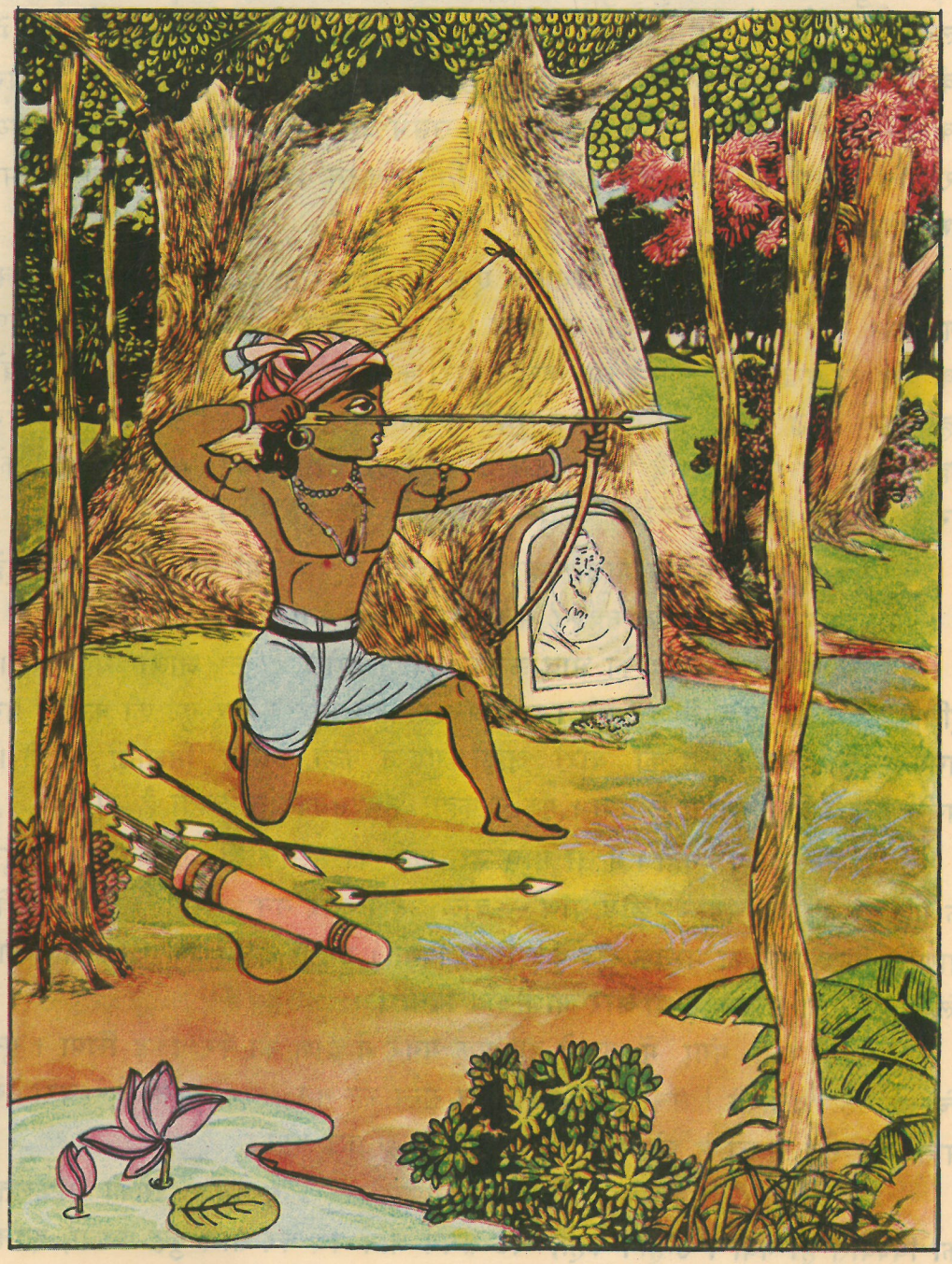

एकलव्य

कुरु देश की सीमा पर रमणीय वन प्रदेश था। भिल्ल जाति का वह निवास स्थान था। इन वनवासियों के राजा थे हिरण्यधनु। वे बड़े अच्छे धनुर्धर थे। उनका इकलौता पुत्र था। नाम था एकलव्य।

शस्त्रास्त्र के आचार्य द्रोण सारे आर्यावर्त में प्रसिद्ध थे। हस्तिनापुर में गुरु द्रोण राजकुमारों को पढ़ा रहे हैं, जानकर भिल्ल राजकुमार एकलव्य को उनके पास विद्या पाने की इच्छा हुई। राजकुमार ने पिता से अनुमति माँगी।

हिरण्यधनु ने कहा, 'कुमार ! द्रोण उत्तम शिक्षा गुरु हैं यह तो ठीक है। पर अभी वे कुरुकुल में हैं। हो सकता है तुझे वहाँ स्थान न भी मिले। तब तू निराश मत होना। गुरु के प्रति अपार भक्ति ही विद्या पाने का मार्ग है। तू यह बात भूलना नहीं।

एकलव्य ने कहा, 'मैं गुरुजी से विनय करूँगा। हस्तिनापुर में मुझे स्थान न भी मिला तो निराश नहीं हूँगा। गुरु की भक्ति में मेरे मन में कुछ अन्तर नहीं पड़ेगा।' पिता ने कहा, 'तब ठीक है। मैं तुम्हारी निष्ठा से प्रसन्न हूँ। मेरा आशीर्वाद है कि तू बड़ा प्रसिद्ध धनुर्धारी बनेगा।' यह कहकर पिता ने कुमार को विदा किया।

एकलव्य हस्तिनापुर पहुँचा। द्रोण गुरु के पास जा अभिवादन कर प्रार्थना की, 'मुझे अपना शिष्य स्वीकार करें।' गुरु दुविधा में पड़ गये। यहाँ इस भिल्ल राजकुमार को स्थान कैसे दिया जाए ?

गुरु ने कहा, 'वत्स, यहाँ हाल में तो तुम्हारे लिए स्थान नहीं है। फिर कभी सोचेंगे।' लेकिन इसी प्रकार के उत्तर की आशा करके वह आया था। इसलिए निराश न होते हुए वह लौट गया। गया सीधा अरण्य में। उसने गुरु द्रोण की मिट्टी की एक प्रतिमा बनाई। उसी प्रतिमा को गुरुपद पर स्थापित करके उसके सानिध्य में उसने धनुर्विद्या का अभ्यास आरम्भ किया। धनुर्विद्या तो भिल्ल बालकों को माता के दूध में मिलती है। एकलव्य में भी धनुर्विद्या की सूझ थी। अभ्यास की लगन ओर गुरु के लिए भक्तिभाव पूर्ण आदर था। खाने-पीने का और नहाने-धोने का सब भाव भूल कर उसने अभ्यास शुरू किया। अभ्यास में इतना मग्न रहता कि शरीर की चिन्ता भी न करता था। ऐसे तपपूर्वक अभ्यास के कारण एकलव्य सिद्धहस्त धनुर्धारी बनता गया। हल्के हाथ निशान साधने की कला—धनुर्लाघव तो एकलव्य का ही ! अभ्यास करते-करते वह इतना कृश और काला हो गया कि वन में जब द्रोण गुरु उसे मिले तब पहले-पहल तो पहचान तक न सके।

एकलव्य का धनुर्लाघव

वन में गुरु द्रोण की प्रतिमा के सामने मानो गुरु साक्षात उसे सिखा रहे हों ऐसी श्रद्धा के साथ एकलव्य का धनुर्विद्या का अभ्यास चालू था। तभी एक घटना घटी।

एक समय हस्तिनापुर के राजकुमारों को लिए गुरु द्रोण वन भ्रमण को निकले थे। अस्थिर लक्ष को बेधने का अभ्यास वन में भली भाँति हो सकता है। इस उद्देश्य से गुरु राजकुमारों को वन में ले आये थे। साथ ही नये वातावरण में शिष्यों का उत्साह भी बढ़ता है यह भी वे मानते थे।

वन में आकर कुरु-कुमार इधर-उधर टहलने लगे। कुमारों के साथ कुशल शिकारी और शिकारी कुत्ते भी थे। शुरू में तो आनन्द-प्रमोद चला। परन्तु बाद में छोटे-बड़े शिकार के लिए सबने गहन वन में प्रवेश किया।

कुमारों के साथ आये एक कुत्ते को तीव्र गन्ध आई। कुत्ता भोंकता-भोंकता गन्ध की दिशा में दौड़ने लगा। कुछ कुमार भी कुत्ते के पीछे-पीछे दौड़ पड़े। दौड़ता हुआ कुत्ता पहुँचा एक मैदान में। जहाँ एकलव्य गुरु की प्रतिमा के सामने धनुर्विद्या का अभ्यास कर रहा था। अभ्यास में मग्न एकलव्य का शरीर पसीने से तर था। पसीने की तीव्र गन्ध से ही तो कुत्ता दौड़ पड़ा था।

कुत्ते के भोंकने से एकलव्य की साधना में विघ्न आने लगा। कुत्ते का भोंकना बन्द कराने के लिए एकलव्य ने सात बाण फेंके जो सातों बाण कुत्ते के मुंह में रह गये। कुत्ते का भोंकना रुक गया। एकलव्य की साधना फिर शुरू हो गई। पर दुःखी कुत्ता कुमारों के पास लौट गया।

कुमारों के अचम्भे का कोई पार न था। ऐसा धनुर्लाघव किसका होगा? उन्होंने जाकर गुरु को बात बताई। ढूँढते-ढूँढते सब एकलव्य तक जा पहुँचे। अर्जुन सबके पीछे था। सोचता था कि ऐसा धनुर्लाघव तो मेरा भी नहीं है? गुरुजी तो कह रहे थे कि मैं अद्वितीय धनुर्धर बनूँगा। अर्जुन का मुँह तेजहीन हो गया था। गुरु ने उसकी ओर एक विश्वास भरी निगाह डाली। कुत्ते का मुँह बन्द करने वाले धनुर्धर का हस्तलाघव उन्होंने नाप लिया था। उन्होंने मन-ही-मन कुछ निश्चय किया और आगे बढ़ गये।

एकलव्य आश्चर्यचकित गुरु को आते देख रहा था।

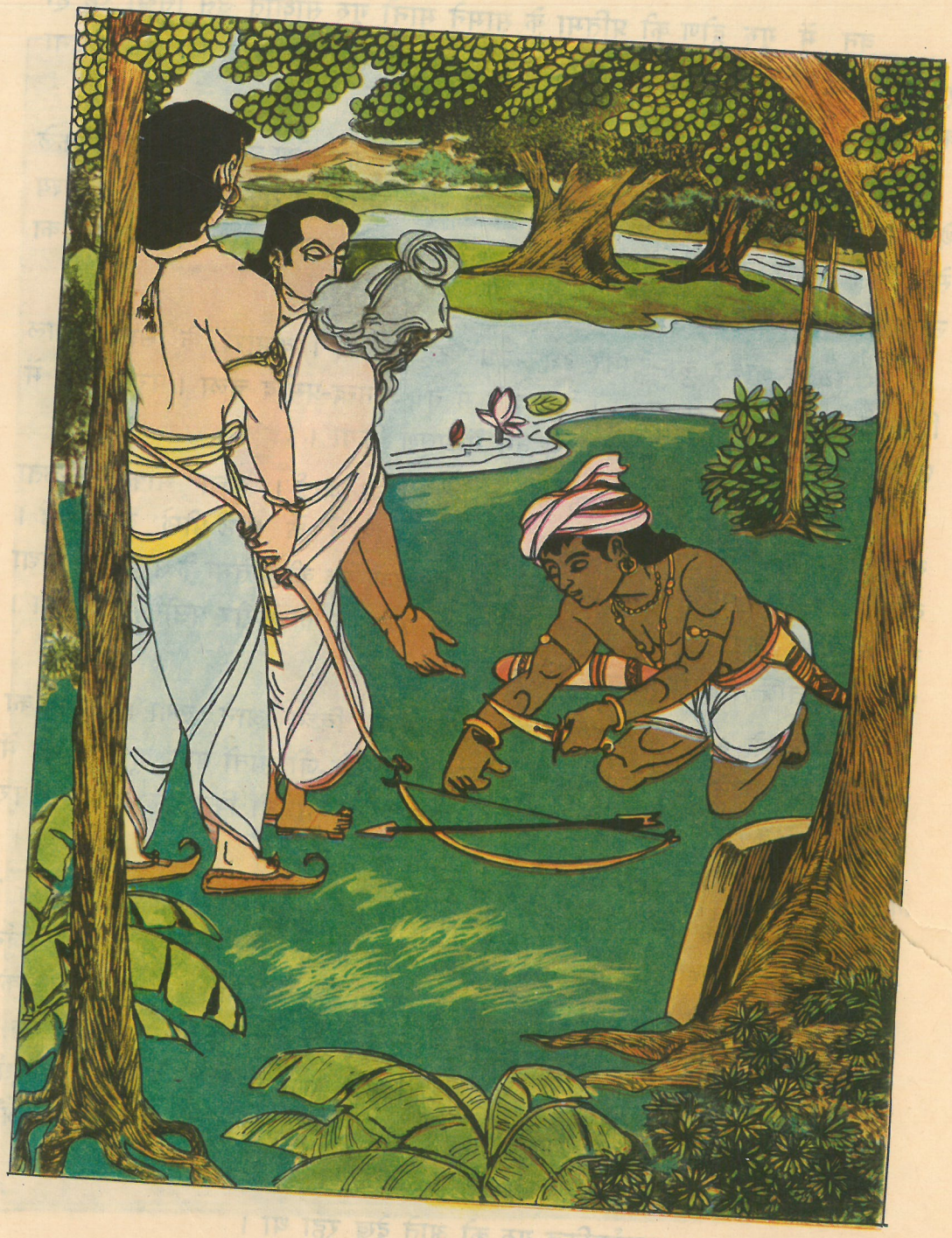

नं.१०४

एकलव्य की गुरु दक्षिणा

गुरु द्रोण यह जानना चाहते थे कि ऐसे हस्तलाघव वाला कुशल धनुर्धर आखिर है कौन ? अर्जुन जानना चाहता था कि गुरु की कृपा पाने वाला अपने से अधिक कुशल धनुर्धर कौन था। गुरु के मुँह पर कुछ जिज्ञासा और कुछ रोष था। शिष्य के मुँह पर कुछ निराशा एवं उद्वेग था।

मैदान में थोड़ी-सी दूरी पर एक युवक तीर चला रहा था। देखने में दुबला-पतला था। बेदरकारी के कारण कुछ मैला सा, पसीने से तर, काला कलूटा शरीर, लटूरिया बाल, तेजस्वी आँखें और अंग प्रत्यंग में स्फूर्ति। पहले-पहल तो गुरु द्रोण पहचान ही न सके। सब निकट आ गये। गुरु के सामने भक्तिभाव से निरखता एकलव्य गुरु के चरणों में गिर पड़ा। निवेदन किया, 'मैं राजा हिरण्यधनु का पुत्र और आपका शिष्य एकलव्य—आपको प्रणाम करता हूँ।'

अब गुरु आश्चर्यचकित रह गये। यह एकलव्य ? कहाँ वह गठीले बदन वाला, स्वस्थ स्वभाव का एकलव्य और कहाँ यह एकलव्य ? गुरु समझ गये कि कठोर परिश्रम और निरन्तर अभ्यास की साधना में लीन इस युवक ने शरीर की कोई परवाह नहीं की। उनका हृदय वात्सल्य से भर आया।

गुरु ने पूछा, 'कुमार कौन सिखाता है तुझे ऐसी सुन्दर धनुर्विद्या ?' एकलव्य ने गुरु की प्रतिमा की ओर अंगुली तानकर कहा, 'और कौन आप ही तो हैं। आपकी प्रतिमा मुझे प्रेरणा देती है। कभी-कभी तो लगता है, आप साक्षात आये हैं। मैं आप ही का शिष्य हूँ।'

गुरु के मुँह पर वेदना की एक लहर दौड़ गई। पर मन को कठोर करके उन्होंने कहा, 'धन्य कुमार तुम्हारी गुरुभक्ति और बाण-सिद्धि। मेरा हृदय से आशीर्वाद है। अब मेरी माँगी गुरुदक्षिणा भी दोगे ?'

एकलव्य के मुँह पर धन्यता का भाव झाँक गया। गद्-गद् कण्ठ से वह बोल उठा, 'आज मैं धन्य हो गया, मेरा शिष्यत्व सफल रहा, आज्ञा कीजिए।'

गुरु बोले, 'कुमार निश्चयपूर्वक कहते हो ?' एकलव्य ने गुरु के चरणों की रज को मस्तक पर चढ़ाते हुए कहा, 'आप आज्ञा कीजिए।'

गुरु ने कहा, 'तो अपने दाहिने हाथ का अँगूठा गुरु-दक्षिणा में दे दे। और मुँह पर स्वार्पण की स्वस्थता के साथ एकलव्य ने दाहिने हाथ का अँगूठा काटकर गुरु के चरणों में रख दिया। निश्चल गुरुभक्ति विद्या को सफल बनाती है।

बहुरंगी चित्रमय

महाभारत

१

लेखक
नटवरलाल याज्ञिक